

सामयिक निबन्ध २
Occasional Paper 2



वैदिक साहित्य
VEDIC LITERATURE

किरीट जोशी
Kireet Joshi



RASHTRIYA VEDA VIDYA
PRATISHTHAN

सामयिक निबन्ध २
Occasional Paper 2

वैदिक साहित्य
VEDIC LITERATURE

किरीट जोशी
Kireet Joshi

With Compliments
From
Maharshi Sandipani Rashtriya
Veda Vidya Pratishthan, UJJAIN

RASHTRIYA VEDA VIDYA
PRATISHTHAN

वैदिक साहित्य

संक्षिप्त विहंगावलोकन

वेदों की प्राचीनता आलोचना और मतभेद का विषय रही है। भारतीय प्राचीन परंपरानुसार वेदों की रचना के समय का निर्धारण असंभव है। फिर भी, इतिहासकारों का सर्वमान्य सिद्धान्त है कि वेद प्राचीनतम ज्ञानपुंज का उपलब्ध आद्य संग्रह है। एक भारतीय इतिहासकार अविनाश चन्द्र दास के अनुसार वेदों की रचना ईसापूर्व 250 से 750 शती के बीच किसी समय हुई होगी। लोकमान्य तिलक के अनुसार इसका अनुमानित समय ईसापूर्व 45वीं से 50वीं शती के बीच होगा। यह मत प्रो. हौग, प्रो. लुडविग् और प्रो. याकोबी की स्थापनाओं से मिलता है। प्रो. व्हिटनी इसके रचनाकाल को ईसापूर्व 15वीं से 20वीं शती के बीच मानते हैं, प्रो. मैक्स म्यूलर का विश्वास है कि वेद की रचना ईसापूर्व 13वीं शताब्दी में हुई।

बृहदारण्यकोपनिषद् के अनुसार चारों वेद—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—परमपिता के निःश्वास हैं।

अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितम् एतद् यद् ऋग्वेदो।

यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वागिरसः।

मनुस्मृति के अनुसार संपूर्ण वेद ज्ञान से आलोकित है (सर्वज्ञानमयो हि सः)। ऐसा विश्वास किया जाता है कि अपने आदि स्वरूप में वेद एक ही था, ऋषि व्यास ने इसे चार भागों में विभक्त किया। इसी कारण उन्हें वेदव्यास कहा जाता है। चारों वेद कई प्रकार से मंडल, अष्टक, वर्ग, सूक्त, अनुवाक्, खंड, प्रश्न, छंद इत्यादि विभागों में विभाजित किए गये हैं। वेद के पद्यात्मक और गद्यात्मक रचना का प्रत्येक शब्द गिनकर निश्चित कर लिया गया है। मंत्रों के समग्र संग्रह को 'संहिता' कहते हैं। एक मत के अनुसार वेद शब्द मंत्रों (काव्यात्मक प्रेरणा और अनुभूति की अपरिहार्य अभिव्यंजना) के संकलन तथा ब्राह्मण दोनों के लिए प्रयुक्त हो सकता है। ब्राह्मण तीन भागों में विभक्त है: (1) ब्राह्मण (2) आरण्यक (3) उपनिषद्। ब्राह्मणों में विभिन्न प्रकार के यज्ञों, उनके अनुष्ठानों और विधियों का विस्तृत वर्णन एवं व्याख्या है।

आरण्यकों का गृह्यज्ञान कुछ दीक्षित व्यक्तियों के लिए है और उपनिषदों में वेद में समाहित ज्ञान का प्रतिपादन है। उपनिषदों को वेदान्त भी कहते हैं। बाद में उपनिषदों को व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने के लिए ऋषि बादरायण व्यास ने ब्रह्मसूत्र या शारीरिक सूत्र की रचना की। उसके उपरान्त महान महाभारत के एक अंश के रूप में भगवद्गीता की रचना हुई जिसे उपनिषदों का सारतत्व माना जाता है। उपनिषद ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता की समष्टि को 'स्थानत्रयी' कहा जाता है।

वैदिक साहित्य में मुख्यरूप से मंत्रसंहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों का समावेश है। मंत्रसंहिता को समझने के लिए ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् का अध्ययन अत्यावश्यक माना जाता है, और ब्रह्मसूत्र तथा भगवद्गीता का अध्ययन भी आवश्यक समझा जाता है। वैदिक साहित्य में वे छह अन्य रचनायें भी सम्मिलित हैं जिन्हें वेद को समझने में सहायक माना जाता है। उन्हें शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द और ज्योतिष के नाम से जाना जाता है। इनमें से प्रत्येक को वेदांग कहा जाता है।

वैदिक यज्ञों के कर्मकांड से सम्बन्धित वेदांग को कल्प कहते हैं। कल्प वेदांग सूत्रों में है, इसलिए संक्षिप्तता इनकी विशेषता है। समस्त कल्प वेदांग और उसका साहित्य त्रिस्तरीय है, इसमें श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र सम्मिलित हैं। प्रत्येक वेद के लिए अलग-अलग प्रकार के श्रौत, गृह्य और धर्मसूत्र हैं। शांख्यायन, आश्वलायन, औपस्तम्ब, बौधायन और कात्यायन प्रसिद्ध श्रौतसूत्र हैं। गृह्यासूत्रों में शांख्यायन गोभिल, औपस्तम्ब, बौधायन, काठक, पारास्कर और कौशिक आदि शामिल हैं। धर्मसूत्रों में गौतम, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, बौधायन और वशिष्ठ धर्मसूत्रों की गणना की जाती है।

कल्पसूत्रों की इन तीन श्रेणियों के अतिरिक्त शुल्बसूत्र नामक एक चौथी श्रेणी भी है जिसे प्राचीन ज्यामितिशास्त्र का उद्गम माना जाता है। औपस्तम्ब, बौधायन और कात्यायन ये तीन प्रसिद्ध शुल्बसूत्र हैं। कल्प वेदांग की तरह अन्य वेदांगों का भी सहायक साहित्य है। यह सब

और अन्य अधिक विषय मिलकर विशाल वैदिक साहित्य का निर्माण करते हैं। इतिहास, पुराण और वैदिक दर्शन के संप्रदायों को भी वैदिक साहित्य का अंग माना जाता है।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि वैदिक साहित्य का बीजतत्व मंत्र संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् है।

वेदों में ऋग्वेद का स्थान अप्रतिम है। इसमें 10 मंडल और 1017 सूक्त हैं। ऋग्वेद के मंत्रों की संपूर्ण संख्या 10,580 है। ऋग्वेद के शब्दों और अक्षरों तक को गिन लिया गया है। इसमें शब्दों की संख्या 1,53,826 और अक्षरों की संख्या 4,32,000 है। मंत्रों को प्राप्त करने वाले कुछ विशिष्ट द्रष्टा ऋषियों में वशिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव, भारद्वाज, अत्रि और मधुच्छन्दस प्रमुख हैं। एक अकेले ऋषि या उसके परिवार के ऋषियों के स्तोत्रों के लिए छह मंडल निर्धारित किए गये हैं।

इस प्रकार द्वितीय मंडल मुख्यतया ऋषि गृत्समद के सूक्तों का संकलन है, इसी तरह तृतीय और सप्तम मंडल क्रमशः महर्षि विश्वामित्र और वशिष्ठ के, चतुर्थ वामदेव और षष्ठ भारद्वाज के स्तोत्रों के संग्रह हैं। पंचम मंडल अत्रिपरिवार के स्तोत्रों से भरा हुआ है। प्रत्येक मंडल में अग्नि को संबोधित सूक्त पहले संकलित हैं, तत्पश्चात् वे सूक्त हैं जिनका देवता इन्द्र है; अन्य देवों बृहस्पति, सूर्य, ऋषभ, उषा, इत्यादि के स्तुतिमूलक सूक्त मंडल के अंत में रखे गये हैं। संपूर्ण नवों मंडल अकेले एक देवता सोम को समर्पित है। प्रथम, अष्टम और दशम मंडलों में विभिन्न ऋषियों के सूक्त संकलित हैं। किन्तु प्रत्येक ऋषि के स्तोत्र पहले अग्नि, फिर इन्द्र तदुपरान्त अन्य देवों के क्रम से रखे गये हैं।

वैदिक मंत्रों की इस व्यवस्था में हम विचारों के विकास का एक निश्चित सिद्धान्त भी देख सकते हैं। प्रारम्भिक मंडल इस प्रकार परिकल्पित किया गया लगता है कि वेद का सामान्य विचार अपने सभी तत्वों के साथ स्थापित प्रतीकों की ओट में कुछ निश्चित संख्या के ऋषियों की वाणी में स्वयं को उचित ढंग से उजागर कर सकें, प्रायः

सभी ऐसे ऋषि उच्चकोटि के चिंतक, पवित्र गायक हैं तथा कुछ के नाम तो वैदिक परंपरा में अति विख्यात हैं। यह भी महत्वपूर्ण है कि दसवें या अंतिम मंडल में रचनाकारों की विविधता पूर्वपक्षा अधिक है, यह मंडल वैदिक विचारों के विकास क्रम में अंतिम और कुछ सूक्तों की भाषा की दृष्टि से अति अर्वाचीन है।

यहीं हमको पुरुषसूक्त और सृष्टि से संबंधित उदान्त सूक्त मिलता है। यहीं पर आधुनिक विद्वान समझ लेते हैं कि उन्होंने वेदान्तिक दर्शनब्रह्मवाद के मूलस्त्रोत की खोज कर ली है। यज्ञ वैदिक परंपरा और ज्ञान का प्रतीक और प्रधान अनुष्ठान है। यज्ञ आन्तरिक उच्च शक्तियों, देवों और परमतत्त्व के प्रति आत्मनिवेदन, प्रणति और समर्पण का प्रतीक है। इस समर्पण की परिणति विस्तृत कर्मकांड, हवन सामग्री के संचयन, यज्ञाग्नि के प्रज्वलन और अग्नि में विविध द्रव्यों घृत, शस्य और अन्य वस्तुओं की आहुति के रूप में होती है। यह समस्त प्रक्रिया उपयुक्त मंत्रों और स्तोत्रों के शुद्ध उच्चारण, निर्धारित विधि से गायन, उचित ढंग से हस्तसंचालन तथा अन्य संकेतों या मुद्राओं के साथ संपन्न होती है। वैदिक रहस्यविद्या में यह धारणा समाहित है कि मानवजीवन एक यात्रा है। इसे यज्ञ की यात्रा माना जाता है जिसे अत्यधिक सावधानी और आत्मसंयमपूर्वक अनुशासित ढंग से संपादित किया जाता है ताकि इस यात्रा की बाधाएँ दूर हो सकें और सृष्टि के विविध स्तरों पर महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त हो सकें। शब्द, प्रत्यय और यथार्थ के बीच एक घनिष्ठ संबंध की कल्पना की गई थी और यह माना जाता था कि शब्द विचारों का द्वार और विचार यथार्थ की अनुभूति का द्वार खोलते हैं। इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर यज्ञ के कर्मकांड को पूर्ण विस्तार और शुद्धता के साथ विकसित किया जाता था तथा उपासना के अतिरिक्त यज्ञ के अनुष्ठान पर अधिक ध्यान दिया जाता था। यज्ञ की संपूर्ण प्रक्रिया को संपन्न करने वाले पुरोहित को 'अध्वर्यु' और अध्वर्यु द्वारा प्रयुक्त मंत्रों को यजुर्वेद कहा जाता था। इसीलिए यजुर्वेद को अध्वर्युवेद भी कहते हैं। यजुर्वेद की रचना मूलतः गद्य में हुई है।

मत्स्यपुराण के अनुसार प्रारम्भ में यजुर्वेद ही एकमात्र वेद था। वायुपुराण और विष्णुपुराण में यही विचार दुहराया गया है। वेद व्यास ने प्रतीकात्मक यज्ञ की प्रक्रिया को ध्यान में रखकर चार संहिताओं में इसे व्यवस्थित किया और उन्होंने पैल को ऋग्वेद, वैशम्पायन को यजुर्वेद, जैमिनि को सामवेद और सुमन्तु को अथर्ववेद सौंपा। कालान्तर में उन लोगों ने अपने-अपने शिष्यों को वह ज्ञान दिया, तदुपरान्त मौखिक परंपरा द्वारा गुरु से शिष्य तक ज्ञानसंचरण की परंपरा विकसित हुई। इस प्रकार वेदों के विभिन्न पाठों या शाखाओं का विकास हुआ। भागवत और अन्य पुराणों में वेदों की विविध शाखाओं का विस्तृत विवरण मिलता है। महाभारत के शांतिपर्व (382 अध्याय) में भी हमें इसी प्रकार का विवरण उपलब्ध होता है। चरणव्यूह में भी हमें वेद की शाखाओं के संबंध में व्यवस्थित सूचना प्राप्त होती है। चरणव्यूह की तीन पुस्तकें उल्लेखनीय हैं जिनकी रचना का श्रेय शौनक, कात्यायन और व्यास को दिया जाता है।

शाखाओं की पूर्ण संख्या 1131 मानी जाती है, किन्तु वर्तमान में केवल दस शाखायें जीवित बची हैं। जहां तक ऋग्वेद का संबंध है, उसकी कभी 21 शाखायें थीं, उनमें से अब केवल एक शाकल शाखा ही बची है। ऐसा कहा जाता है कि उत्तरप्रदेश और गुजरात के कतिपय वेदपाठियों को शांख्यायन शाखा आज भी ज्ञात है किन्तु यह निश्चित नहीं है। जहां तक यजुर्वेद का संबंध है, पतंजलि ने अपने व्याकरण महाभाष्य में कहा है कि इसकी 101 शाखायें थीं, लेकिन आज केवल पाँच शाखायें विद्यमान हैं। वास्तव में यजुर्वेद मोटे तौर पर शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद नामक दो भागों में विभक्त है। शुक्ल यजुर्वेद को वाजसनेयी भी कहते हैं। वाजसनेयी संहिता में 30 अध्याय, 303 अनुवाक्, 1975 कंडिका, 21727 शब्द और 88875 अक्षर हैं। शुक्ल या वाजसनेयी यजुर्वेद की दो वर्तमान शाखायें काण्व और माध्यन्दिन हैं। कृष्ण यजुर्वेद की पाँच शाखायें आपस्तम्ब (तैत्तिरीय), हिरण्यकेशी (कपिष्ठल), कठ, काठक और कालाप या मैत्रायणी वर्तमान

हैं। मैत्रायणी संहिता में चार कांड हैं जिन्हें प्रपाठकों में विभक्त किया गया है। इस संहिता में 3144 मंत्र हैं, जिनमें से 1701 ऋग्वेद के ऋक् हैं। इस संहिता में चार्तुमास्य, वाजपेय, अश्वमेध, राजसूय, सौत्रामणि इत्यादि महत्वपूर्ण यज्ञों के मंत्र और विधिविधान हैं, तैत्तिरीय संहिता में सात कांड, 44 प्रपाठक और 631 अनुवाक् हैं। इस संहिता में राजसूय यज्ञ, यजमान और पुरोडाश आदि का वर्णन है।

यज्ञ में अध्वर्यु के अलावा उद्गाता भी होता है जो कुछ विशिष्ट मंत्रों का गायन करता है। उद्गाता के लिए संकलित मंत्रों को सामवेद कहा जाता है। चरणव्यूह और पंतजलि के महाभाष्य में यह सूचित किया गया है कि सामवेद की एक हजार शाखायें थीं। सामवेद प्रकृत्या संगीतात्मक है और इसमें केवल वे ही ऋक् सम्मिलित हैं जो शुद्ध ङं से गाये जा सकें। इसमें 1549 ऋक् हैं जिनमें केवल 75 मंत्र ऋग्वेद से स्वतंत्र हैं। वर्तमान में सामवेद की केवल तीन शाखायें कौथुम, राणायनीय और जैमिनीय विद्यमान हैं।

कुछ समुचित शब्दों या स्तोत्रों जैसे हा, यू, हो, आई, ओ, ओह, आड, हा इत्यादि को जोड़कर ऋचाओं को सामवेद के संगीत में परिणत किया गया है।

ऋग्वेद से संबद्ध 'होता', यजुर्वेद से संबद्ध 'अध्वर्यु', सामवेद से संबद्ध 'उद्गाता' के अतिरिक्त एक चौथा पुरोहित भी होता है जिसे ब्रह्मा कहा जाता है जो अथर्ववेद के साथ ही चारों वेदों का विशेषज्ञ माना जाता है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद को सामूहिक रूप से वेदत्रयी कहा जाता है। अथर्ववेद की गणना वेदत्रयी में नहीं की जाती, यद्यपि वैदिक कर्मकांड में इसका स्थान महत्वपूर्ण है। अथर्ववेद को अथर्वगिरस भी कहा जाता है। अथर्ववेद में दो प्रकार के मंत्र हैं, पहले वे मंत्र जो बीमारियों का उपचार करने, हिंसक पशुओं, पिशाचों और शत्रुओं का विनाश करने से संबंधित हैं, दूसरे वे जो परिवार और पुर में शांतिस्थापित करने, स्वास्थ्य, संपदा, सुरक्षा और शत्रुओं को वशीभूत

करने से संबंधित हैं। आयुर्वेद का प्रारम्भ भी अथर्ववेद में पाया जाता है।

अथर्ववेद की संहिता में 20 कांड हैं जिनमें 34 प्रपाठक, 111 अनुवाक, 739 सूक्त और 5849 मंत्र हैं। इनमें से करीब 1200 मंत्र ऋग्वेद में भी मिलते हैं। अथर्ववेद का छठा भाग गद्य में और शेष पद्य में है।

पंतजलि ने संकेत किया है कि अथर्ववेद की 9 शाखायें थीं किन्तु आजकल केवल पैप्पलाद और शौनक नामक दो शाखायें ही उपलब्ध हैं।

चारों वेदों और उनकी अनगिनत शाखाओं के अतिरिक्त ब्राह्मणों का विस्तृत साहित्य है। ब्राह्मणों के उपांग, जो अंशतः पद्य में हैं, आरण्यक कहे जाते हैं। इन्हें इसलिए भी आरण्यक कहा जाता है क्योंकि इनके अध्ययन की परंपरा अरण्य में थी। कुछ उपनिषद् भी आरण्यकों में गिने जाते हैं, इसलिए उपनिषदों और आरण्यकों के बीच निश्चित सीमा रेखा खींचना प्रायः असंभव है। ब्राह्मणों में भिन्न-भिन्न प्रकार के यज्ञों का विस्तृत विवरण और उनके कर्मकांड को विधि विधान दिया गया है। ब्राह्मणों में इतिहास, अनुश्रुति, उपाख्यान और व्यक्तियों से संबंधित कहानियों का संग्रह समाविष्ट है। ब्राह्मण का एक पर्यायवाची शब्द प्रवचन भी है। प्रवचन का अर्थ प्रतिपादन है। इसलिए ब्राह्मणों को वेद के विधि अंगों का प्रतिपादन करने वाला माना जाता है। ऐसा लगता है कि ब्राह्मण साहित्य बड़ा विशाल रहा होगा किन्तु उसमें से बहुत ब्राह्मण लुप्त हो गये हैं।

वेदों के प्रत्येक शाखा का अलग ब्राह्मण है। वेदों के विभिन्न शाखाओं के साथ उनके ब्राह्मणों का भी निर्देश किया गया है। ऋग्वेद की शाकल शाखा का ब्राह्मण ऐतरेय है, इसकी बास्कल शाखा से कौशीतकी ब्राह्मण संबद्ध है। शुक्ल यजुर्वेद से शतपथ ब्राह्मण और तैत्तिरीय तथा काठक ब्राह्मण कृष्णयजुर्वेद से संबंधित हैं। जैमिनीय, आर्षेय, मंत्र, सामविधान, देवताध्याय वंश, पंचविंश, षड्विंश के सहित सामवेद के अनेक ब्राह्मण

हैं। गोपथ ब्राह्मण अथर्ववेद से संबंधित हैं। लुप्त ब्राह्मणों में पैंगायनी, आश्वलायन, गालव, चरक, श्वेताश्वतर, काठक, मैत्रायणी, जाबालक, खाण्डिकेय, रौरकी, शात्यायन, तलतकार, आरुण्य, पाराशर और कापेय ब्राह्मण महत्वपूर्ण हैं।

अनेक प्राचीन विद्वानों के अनुसार चारों वेदों के मंत्र और उनकी व्याख्या में लिखे गये ब्राह्मणों को मिला कर वेद कहा जाता है। वेद जैसा ही सम्मान ब्राह्मणों का बराबर रहा है। वेदों के समान ही ब्राह्मणों को मानते हुए कर्मकांड संपन्न किए जाते थे, किन्तु 19वीं शती में महर्षि दयानंद ने अपना मत व्यक्त किया कि ब्राह्मण वेद नहीं हैं। उनके अनुसार वेद प्रकट हुए थे जबकि ब्राह्मण वेद की तरह प्रकट नहीं हुए, यद्यपि वे ऋषियों द्वारा अभिव्यक्त हैं। उन्होंने अपने दृष्टिकोण को स्थापित करने के लिए अनेक तर्क दिए हैं जो निष्पक्षतापूर्वक विचारणीय हैं। जो भी हो, ऐसा कहा जाता है कि ब्राह्मणों की भाषा वेदमंत्रों की भाषा नहीं है। कुछ लोगों का विश्वास है कि ब्राह्मण वेदों का भाष्य है और वे प्रवचन की भाषा में व्यंजित किए गये हैं। इसलिए वे वैदिक तो हैं किन्तु स्वयं वेद नहीं हैं। फिर भी इस बात में कोई मतभेद नहीं है कि ब्राह्मण वेद की व्याख्या या टीका हैं इसलिए जहां तक प्रामाणिकता का प्रश्न है वेदों की वर्चस्व स्वयंसिद्ध है।

इसमें शक नहीं कि वैदिककाल में ब्राह्मण अन्य वैदिक साहित्य की तुलना में वेदों के सर्वाधिक निकट थे। यह सर्वविदित है कि ब्राह्मण कर्मकांड को महत्व देते थे, ज्ञानकांड को नहीं। जहां तक ज्ञानकांड का संबंध है उसके लिए हमारे पास आरण्यकों और उपनिषदों का विशाल साहित्य है। आरण्यकों और उपनिषदों को सामूहिक रूप से वेदांत कहा जाता है क्योंकि ये वैदिक साहित्य के मौलिक तत्त्वचिंतन के अंतिम स्तर हैं।

यज्ञों का गुह्य व्याख्या, उनका कर्मकाण्ड और वर्णाश्रम व्यवस्था से संबंधित आचार का आन्तरिक अभिप्राय ही आरण्यकों का मुख्य प्रतिपाद्य है। ऐतरेय और कौशीत की आरण्यक ऋग्वेद से, तैत्तिरीय और

शांख्यान आरण्यक कृष्णयजुर्वेद से, बृहदारण्यक शुक्ल यजुर्वेद से संबंधित है। तलवकार आरण्यक सामवेद की जैमिनीय शाखा से संबंधित है, वास्तव में यह आरण्यक जैमिनीय ब्राह्मणोपनिषद् है। इसमें आरण्यक और उपनिषद् दोनों समाविष्ट हैं।

सबसे प्रसिद्ध आरण्यक ऋग्वेद का ऐतरेय आरण्यक है। इसमें 18 अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय कई खंडों में विभक्त है। जैसा पहले कहा गया है, आरण्यक भिन्न-भिन्न यज्ञों उनके अनुशीलन एवं अनुष्ठान का रहस्यात्मक विवेचन करते हैं।

वेद का आध्यात्मिक अर्थ मुख्यतः उपनिषदों में पाया जाता है। उपनिषद् का वास्तविक अर्थ है वह गुह्य शिक्षा जो अंतिम सत्य में प्रविष्ट होती है। यह गुह्य शिक्षा सामान्यतया तब संचरित और गृहीत होती है जब शिष्य गुरु के समीप बैठता है और गुरु और शिष्य की संचेतना में ऐसी झंकृत होती है कि मौन रहते हुए भी गुह्यसत्य का संचरण और ग्रहण हो सकता है। उपनिषदों में ये दसईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, भांडूका, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छांदोग्य, और बृहदारण्यक अधिक महत्वपूर्ण हैं। शंकराचार्य ने अपने भाष्य में पाँच अन्य उपनिषदों का भी उल्लेख किया है और परमसत्य की आध्यात्मिक उपलब्धि के लिए उन्हें भी उच्च स्थान दिया है। उनके नाम हैं श्वेताश्वतर, महानारायण, मैत्रायणी, कौशीतकी और नृसिंहापनी मुक्तोपनिषद् में कहा गया है कि उपनिषदों की कुल संख्या 108 है और वे चारों वेदों से इस रूप में निष्पन्न हैं। 1) ऋग्वेद से 10, 2) शुक्लयजुर्वेद से 19 3) कृष्णयजुर्वेद से 32, 4) सामवेद से 16 और 5) अथर्ववेद से 31 उपनिषद्। मुक्तोपनिषद् यह भी बताता है कि ब्रह्म या चरम सत्य की अनुभूति की प्रक्रिया ब्रह्मजिज्ञासा या ब्रह्म को जानने की उत्कंठा से प्रारम्भ होकर उपनिषदों के श्रवण मनन और निदिध्यासन तक अनवरत चलती रहती है।

ईशा, केन, कठ, मुंडक, श्वेताश्वतर और महानारायण काव्यात्मक रचनाएँ हैं और इनमें उत्तम साहित्यिक गुण हैं। अथर्ववेद के अनके उपनिषद् हैं, उनमें से कुछ तो अवैदिक भी हैं क्योंकि उनका संबंध

पुराण और तंत्र से है। यदि समस्त उपनिषद् साहित्य की गणना की जाय तो उनकी संख्या कम से कम 250 होगी।

निम्नांकित तालिका द्वारा महत्वपूर्ण उपनिषदों और वेदों के साथ उनके संबंधों का वर्णन संक्षेप में किया जा सकता है।

ऐतरेय, भांडूक्य और कौशीतकी का संबंध ऋग्वेद से है,
तैत्तिरीय, कठ और श्वतेश्वतर का संबंध कृष्णयजुर्वेद से है,
बृहदारण्यक और ईशा का संबंध शुक्लयजुर्वेद से है,
केन और छान्दोग्य का संबंध सामवेद से है, और
प्रश्न तथा मुंडक का संबंध अथर्ववेद से है।

इस तथ्य के बावजूद कि भाषा और प्रतीकों की दृष्टि से उपनिषद् वेदों से उतने विप्रकृष्ट नहीं हैं फिर भी उनको समझना बड़ा कठिन है। उपनिषदों को शिक्षा का नहीं तत्त्वज्ञान के आलोक का वादन मानना चाहिए। वे ऐसे जिज्ञासुओं के लिए रचे गये थे जिनका वैदिक विचारों और वेदान्तिक ऋषियों से सामान्य रूप में पूर्व परिचय था और उन सत्यों का भी जिनको ध्यान में रखकर उपनिषदों की रचना हुई थी उन्हें व्यक्तिगत अनुभव था। यही कारण है कि वे उन विचारों और उनमें अन्तर्निहित सहायक विचारों को अपनी शैली में द्रुत गति से द्योतित कर सके थे। प्रायः मूलपाठ में निहित अनेक विचारों से अकेला एक शब्द या वाक्य अथगर्भित रहता है किन्तु उसे कहीं भी स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं करता। निष्कर्ष को प्रतिपादित करने वाला तर्क प्रायः शब्दों द्वारा संकेतित तो होता है, किन्तु स्पष्ट तथा बुद्धि को प्रेषित नहीं होता। पाठक या श्रोता से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने प्रातिभज्ञान के अनुभव से प्रमाणित और पुष्ट करता हुआ प्रकाश की ओर बढ़ता जाय न कि तर्कबुद्धि के निर्णयों के समक्ष अपने विचारों को समर्पित कर दे। फलतः उपनिषदों को ठीक से समझने के लिए पर्याप्त धैर्य, शमगुण और मनोयोग की आवश्यकता है। इतना होने पर भी उपनिषदों के गूढ़ अर्थ में प्रवेश कठिन ही है।

उपनिषदों के अनेक भाष्यकार रहे हैं और मध्ययुगों में उपनिषदों के मूल दार्शनिक सिद्धान्तों को लेकर तीव्र मतभेद रहे हैं। इससे उपनिषदों की व्याख्या के कम से कम पाँच प्रमुख निकाय प्रचलित हुए। वे हैं— अद्वैतवाद या शंकराचार्य का एकब्रह्मवाद, विशिष्टाद्वैतवाद या रामानुजाचार्य का विशिष्ट एकब्रह्मवाद, शुद्धाद्वैतवाद या वल्लभाचार्य का शुद्ध एकब्रह्मवाद, द्वैताद्वैतवाद या निम्बार्काचार्य का द्वैत अद्वैतवाद और द्वैतवाद या मध्वाचार्य का द्विसत्तावाद। इन महान आचार्यों ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखे हैं। ब्रह्मसूत्र बादरायण (व्यास ऋषि) द्वारा रचित है और उसमें उपनिषदों का रहस्य सूत्र रूप में प्रतिपादित किया गया है। इन आचार्यों के भाष्यों पर उनके शिष्यों ने टीकाएँ की हैं। इस तरह टीकाओं पर टीकाएँ होती रही हैं। भगवद्गीता को भी औपनिषदिक शिक्षा के सारतत्वों का व्यवस्थित प्रतिपादन माना जाता है। विभिन्न आचार्यों द्वारा भगवद्गीता की भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ की गई हैं इस तरह भगवद्गीता पर भी अनेक टीकाएँ उपलब्ध हैं। उपनिषद् ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता पर किया जाने वाली टीका साहित्य हमारे समय में भी लगातार विकसित हो रही है।

व्यापक अर्थ में वैदिक साहित्य में वेदांग भी सम्मिलित है। वेदांग संहिता का विकास उपनिषदों से पूर्व ही प्रारम्भ हो गया था। मुंडक उपनिषद् निम्न छह वेदांगों का उल्लेख करती है, जैसे कि 1) शिक्षा 2) कल्प 3) व्याकरण 4) निरुक्त 5) छंद और 6) ज्योतिष।

ध्वनि, वर्ण, उच्चारण और इन आधारभूत तत्वों के पठनपाठन का संबंध शिक्षा वेदांग से है। प्रत्येक वेद में कुछ अक्षरों का विशिष्ट ढंग से उच्चारण किया जाता है और प्रत्येक के सस्वर पाठ की पद्धति और गति है। शिक्षा संग्रह नामक पुस्तक में 32 प्रकार के विशिष्ट शिक्षाग्रंथों का संग्रह है। ये पद्धतियाँ चारों वेदों की विभिन्न शाखाओं से संबंधित हैं। शिक्षा संबंधी पुस्तकों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुस्तक प्रसिद्ध पाणिनीय शिक्षा है। याज्ञवल्क्य शिक्षा दूसरा महत्वपूर्ण ग्रंथ है। वाशिष्ठी शिक्षा में ऋग्वेद और यजुर्वेद के मंत्रों की विभिन्नता का विस्तृत विवरण है।

याज्ञवल्क्य और वाशिष्ठी शिक्षायें वाजसनेयी संहिता से संबंधित है। शिक्षा की अन्य महत्वपूर्ण कृतियां हैं काव्यायनी शिक्षा, पाराशरी शिक्षा, माध्यान्दिनी शिक्षा, केशवी शिक्षा और मांडुकी शिक्षा। नारदीय शिक्षा, जो सामवेद से संबंधित है, से विभिन्न ध्वनियों के रहस्य का ज्ञान उपलब्ध होता है। एक वेदांग तथा एक विज्ञान के रूप में शिक्षा का विकास प्राचीन भारत में उच्चारण संबंधी व्यापक अनुसंधान की गंभीरता का द्योतक है। इसी वेदांग के चलते प्राचीन काल से लेकर आज तक वेदोच्चारण की पद्धति अविकल रह सकी है। एक शाखा का समस्त देश में एक ही ढंग से सस्वर पाठ होता है। एक शाखा के वेदपाठी चाहे वे भारत के किसी प्रान्त के हों, एक ही स्वरशैली, गति, यति, शक्ति तथा हस्तसंचालन की एक जैसी मुद्रा से मंत्रोच्चारण करते हैं। समस्त देश में उच्चारण की वेदांग पद्धति को इतनी एकरूपता प्राप्त हो सकी और इसकी परंपरा इतनी सुदृढ़ हो सकी क्योंकि शिक्षा के संबंध में एक सीमा तक पूर्णता प्राप्त कर ली गई थी।

वैदिक धर्म या विहित क्रियाओं तथा यज्ञों पर आधारित है। इसलिए समयानुसार इस कर्मकांड की व्यौरेवार जानकारी आवश्यक हुई, इसी से विशाल कल्पसूत्र साहित्य का उद्भव हुआ। कल्प का अर्थ है वह जो यज्ञों, अन्य शास्त्रोक्त कर्मों तथा धार्मिक विधि विधानों में करणीय हो। कर्मकांड त्रिस्तरीय है, श्रौत सूत्र, जो श्रुति या वेद विहित यज्ञों से संबंधित है, गृह्यसूत्र, जो गृहस्थ जीवन की विविध धार्मिक क्रियाओं और जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत अनेक महत्वपूर्ण अवसरों पर होने वाले संस्कारों से संबंधित है, धर्मसूत्र जो सामाजिक, राजनीतिक और अन्य हितप्रद कर्तव्यों से संबंधित है। समूचा कल्प साहित्य सूत्र साहित्य है क्योंकि यह संक्षिप्त वाक्यों में रचा गया है। कल्प सूत्रों की एक चौथी श्रेणी भी है जिसे शुल्ब सूत्र कहते हैं और जो ज्यामिति, यज्ञवेदी संरचना, यज्ञपात्र और अन्य वास्तुकर्मों से संबंधित है।

प्रत्येक वेद के अनुरूप अनेक श्रौतसूत्र थे। शाखायन और आश्वलायन ऋग्वेद से संबंधित हैं; आर्षेय, वैध्यायन, भारद्वाज और

वैखानस कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से, मानव श्रौतसूत्र कृष्णयजुर्वेद की मैत्रायणी शाखा से (इस सूत्र को मनुस्मृति का आधार माना जाता है) कात्यायन श्रौतसूत्र शुक्ल यजुर्वेद से संबंधित है और वैतानसूत्र अथर्ववेद के साथ ही गोपथ ब्राह्मण और यजुर्वेद के कात्यायन श्रौत सूत्र से भी संबंधित है।

यज्ञ के पुरोहित को चारों वेदों से संबंधित श्रौतसूत्रों का सही ज्ञान होना आवश्यक है। कुछ यज्ञों में सोलह पुरोहितों तक की आवश्यकता होती है। 98 प्रकार के यज्ञकर्म हैं जिनमें सात हविर्यज्ञ और सात सोमयज्ञ हैं। हविर्यज्ञ में दर्शपूर्णमास्य और चातुर्मास्य यज्ञ महत्वपूर्ण हैं। सोमयज्ञों में अग्निस्टोम अनुष्ठान महत्वपूर्ण है। सोमयज्ञ तीन प्रकार के हैं। एकाह अर्थात् एक दिन का अनुष्ठान, द्वादशाह अर्थात् 12 दिन का अनुष्ठान और अनेकाह अर्थात् अनेक दिनों का अनुष्ठान। सोमयज्ञ के अग्निचयन पूरे वर्ष भर चलता रहता है।

श्रौतसूत्रों के पश्चात् गृह्य आते हैं, ये भी भिन्न-भिन्न वेदों से संबंधित हैं। शांख्यायन गृह्यसूत्र, शाम्भव्य गृह्यसूत्र और आश्वलायन गृह्यसूत्र ऋग्वेद से संबंधित हैं, गोमिल और खादिर सामवेद के गृह्यसूत्र हैं, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, बौधायन, मानव, काठक, भारद्वाज और वैखानस कृष्णयजुर्वेद के गृह्यसूत्र हैं। जबकि पारस्कर शुक्ल यजुर्वेद का और कौशिक अथर्ववेद का गृह्यसूत्र हैं।

श्रौतसूत्रों में वर्णित यज्ञों के लिए तीन भिन्न-भिन्न प्रकार के यज्ञकुंडों की आवश्यकता पड़ती है जिन्हें गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणा कहते हैं, गृह्यसूत्रों द्वारा निर्दिष्ट देवयज्ञ के लिए केवल एक अग्निकुंड की आवश्यकता होती है।

धर्मसूत्रों में गौतम धर्मसूत्र सामवेद से संबद्ध है और आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, बौधायन कृष्णयजुर्वेद से, लेकिन गौतम, वशिष्ठ, मानव, वैखानस और विष्णुधर्मसूत्र वेद की किसी निश्चित शाखा से संबंधित नहीं हैं।

भारतीय साहित्य में धर्म शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है। मनुस्मृति के अनुसार धर्म वह है जो वेद और स्मृति में निहित है, जो महापुरुषों द्वारा आचरित है और जो जीव की आत्मा के लिए श्रेयस्कर है, संस्कृत साहित्य में धर्मशास्त्र शब्द का संबंध व्यापक रूप से मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति से लेकर जो भी वेद सम्मत हैं उन सभी स्मृतियों से है धर्म साहित्य का सूत्रपात गौतम, बौधायन और अभ्यस्तम्ब के धर्मसूत्रों, जो 6वीं से 4वीं शताब्दी ईसापूर्व के हैं, से होता है। समय के साथ-साथ धर्म साहित्य का विस्तृत विकास हुआ और करीब 100 स्मृतियां लिखी गईं इनमें से कुछ तो गद्य में हैं, अधिकांश पद्यबद्ध हैं। स्मृतिकारों में मनु अग्रगण्य हैं और इनकी मनुस्मृति पर बड़ी संख्या में टीकायें लिखी गई हैं। इन टीकाओं में मेघातिथि, गोविन्दराज, कुल्लूकभट्ट, नारायण, राघवानन्द, नंदन और रामचन्द्र की टीकायें प्रमुख हैं।

कर्मयोग के महान्ग्रन्थ भगवद्गीता में भी धर्म विषयक चर्चा कुछ विस्तार से की गई है, इसमें कर्म, ज्ञान और भक्ति का प्राचीन समन्वय उपलब्ध होता है। भगवद्गीता धर्म के उस विकासशील स्वरूप को मान्यता देती है जिसके द्वारा व्यक्ति और समाज को क्रमिक निकाए और प्रगतिपूर्वक पूर्णता की ओर अग्रसर होने में सहायता मिलती है। विकास की इस प्रक्रिया में स्वधर्म और स्वकर्म की महत्वपूर्ण अवधारणायें भी हैं। गीता के चरमोत्कर्ष वाले अध्याय (18वें) में हम भगवान् कृष्ण को अर्जुन से कहते हुए पाते हैं कि सब धर्मों को छोड़कर एक परमप्रभु की ही शरण में आवो। गीता की विपुल और जटिल शिक्षा वेदों की शिक्षा में सन्निहित प्रतीत होती है जो कर्म, ज्ञान और भक्ति के आद्य संश्लेषण हैं। वेद की प्रधान अवधारणा जिससे उत्तरकाल में धर्म की अवधारणा का विकास हुआ, ऋत है। ऋत और सत्य परस्पर व्यतिहारित हैं लेकिन इन दोनों में निश्चित भेद भी है, सत्य को हम यथार्थ मान सकते हैं पर ऋत का भाव उचित या उपयुक्त है। यथार्थ में वेदों द्वारा परिभाषित पूर्णता का सूत्रसत्य, ऋत

और बृहत् है। सत्य का मौलिक परिपार्श्व बृहत् या व्यापक है। जहां सीमा है वहां पक्षपात है और वहां अपूर्णता तथा सत्य का विकृत रूप है। केवल असीम विस्तार के सन्दर्भ में ही सत्य की प्रतीति, प्राप्ति और बोध हो सकती है, और जब सत्य का बोध हो जाये तभी उचित कर्म का विकास हो सकता है। यही सत्य, ऋत और बृहत् की त्रयी की सार्थकता है।

ऋत के इस मौलिक अर्थ पर यदि हम स्थिर रहें तो भारतीय साहित्य में धर्म के समूचे विकास की अवधारणा को समुचित ढंग से समझ सकते हैं। धर्म वह है जो धारण करता है, जो हमें संसक्ति देता है और विकास तथा प्रगतिपथ पर दृढ़ रखता है। इस संदर्भ में न तो धर्म स्थिर हो सकता है और न सभी मनुष्यों और मानवजीवन के सभी स्तरों के लिए उसकी एकरूपता हो सकती है। जो एक तामसिक के लिए ठीक है वही एक राजसिक के लिए ठीक नहीं हो सकता और जो एक राजसिक के लिए ठीक हो, वही एक सात्विक के लिए ठीक नहीं हो सकता। चूंकि सत्त्व चरम अवस्था नहीं है इसलिए जो सात्विक के लिए ठीक है वह उस व्यक्ति के लिए अनिवार्य नहीं हो सकता जो सत्त्व की स्वर्णिम जंजीरों का अतिक्रमण कर चुका हो, जो तमस, राजस और सात्विक के बन्धनों से परे हो चुका हो और उस अनंत में, जिसे वेद बृहत् कहते हैं, प्रवेश कर चुका हो। वह उन धर्मों से ऊपर उठने में सक्षम हो जाता है जो तमस्, रजस् और सत्त्व द्वारा प्राप्त होनेवाले निम्नस्तरीय विकास के लिए उपयुक्त होते हैं। वह अहं की सीमाओं से मुक्त हो जाता है और सर्वोच्च सत्ता के समक्ष संपूर्ण समर्पण में सक्षम हो जाता है और परमसत्य के बोध की इस स्थिति में वह उचित कर्म करने (ऋत) में समर्थ होती है।

ऋत और धर्म की अवधारणा की इस पृष्ठभूमि में हम भारतीय धर्मशास्त्र के उस समूचे इतिहास को अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं जहां सामाजिक नियमों के अनुसरण का आग्रह तो है फिर भी उनके प्रयोग बहुविध और नवनीय थे तथा धर्म के सभी प्रतिबंधों, सभी

अच्छाइयों, बुराइयों से परे उठ जाने के उपदेश की प्रवृत्ति बीच-बीच में झांकती रहती है। इसके पश्चात् हम रिक्त पर विचार करते हैं। वेद के कठिन शब्दों के संग्रह निघंटु पर एक तरह का भाष्य निरूक्त है। निघंटु के रचनाकार प्रज्ञापति कश्यप माने जाते हैं। निघंटु के प्रथम दो अध्यायों में उन शब्दों का संग्रह है जिनका एक अर्थ है, चतुर्थ अध्याय में उन शब्दों का संग्रह है जो अनेकार्थक हैं। पंचम अध्याय में वैदिक देवताओं के नाम संकलित हैं। निघंटु पर कई टीकायें हुई हैं किन्तु यास्क की टीका को वेदांग की प्रतिष्ठा प्रदान की गई है। यह वेदांग निरूक्त कहा गया है। निरूक्त केवल शब्दार्थ तक ही सीमित नहीं है, इसमें शब्दों के मूल तथा उन मूलों से व्युत्पन्न होनेवाले अनेक पर्यायवाची तथा विलोम शब्दों का भी निर्देश किया गया है। सभी संज्ञा शब्द क्रियाओं से उत्पन्न हुए हैं यह निरूक्त का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है और आधुनिक भाषा शास्त्री भी इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यास्क 10वीं से 8वीं शताब्दी ईसापूर्व किसी समय पैदा हुए थे। यास्क के पूर्व भी वैदिक व्याख्या की कई विधियाँ और पद्धतियाँ थीं जैसे आधिदैवत, अध्यात्म, आख्यानसमय, ऐतिहासिक, नैदान, परिव्राजक, याज्ञिक इत्यादि। यास्क के समय तक आते-आते बहुत से शब्दों के मूल अर्थ दुर्बोध हो चले थे और उन्होंने ऐसे अनेक शब्दों का उल्लेख किया है जिनका अर्थ अनिश्चित था।

कौत्स द्वारा प्रतिपादित एक मत के अनुसार वेद का कोई अर्थ नहीं है। यास्क ने इसका विरोध किया और कहा:

‘स्थानुरयं भारहरः किलाभूद्धीत्य वेदान् न विजानातियोऽर्थम्।

योऽर्थज्ञ इत् सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतप्राप्मा।।’

इस प्रकार उन्होंने उन लोगों की, जो वेद का अर्थ नहीं जानते, तुलना वेद के मारवाहकों से की है। उनके अनुसार जिसे वेद के अर्थ का ज्ञान प्राप्त हो जाता है वह पापमुक्त होकर स्वर्ग की ओर अग्रसर होती है।

निरुक्त पर अनेक टीकायें हुई हैं जैसे दुर्गाचार्य, स्कन्दमाहेश्वर और वररूचि कृत टीकायें।

निरुक्त ऐसे अनेक विषयों का निरूपण करता है जो व्याकरण के अति समीय हैं और इसलिए बहुधा निरुक्त को व्याकरण का एक अंग मान लिया जाता है। जो हो व्याकरण को छह वेदांगों में प्रमुख स्थान प्राप्त है। व्याकरण को वेदों का मुख कहा जाता है। प्राचीन परंपरानुसार सर्वप्रथम ब्रह्मा ने व्याकरण का प्रवर्तन किया। उनका अनुसरण वृहस्पति, इन्द्र, माहेश्वर आदि वैयाकरणों ने किया। व्याकरण के सर्वप्रसिद्ध कर्ता पाणिनी हैं जिन्होंने स्वयं महान वैयाकरणों के अनेक महान नामों का उल्लेख किया है। पाणिनी की प्रसिद्ध पुस्तक का नाम अष्टाध्यायी है जिसमें वैदिक और वैदिकेतर शब्दों का विवेचन किया गया है। पहिली शती से 14वीं शती के बीच के अनेक वैयाकरणों ने पाणिनी का अनुगमन किया है। कुछ लोगों का विश्वास है कि पाणिनी 7वीं शताब्दी ईसापूर्व में हुए जबकि अन्य लोग उनका समय 4वीं शताब्दी ईसापूर्व मानते हैं। युधिष्ठिर मीमांसक उनका समय विक्रम संवत् से 2900 वर्ष पूर्व मानते हैं जो महाभारत युद्ध से 200 वर्ष पश्चात् समझा जाता है।

व्याकरण की व्याख्याओं में पंतजलि का महाभाष्य सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। यह पाणिनी के व्याकरण पर सर्वाधिक प्रमाणिक ग्रन्थ माना जाता है। पंतजलि के महाभाष्य की इतनी प्रामाणिकता है कि जहां भी सूत्र, वार्तिक और महाभाष्य में मतभेद है वहां पंतजलि के महाभाष्य का सिद्धान्त ही अंतिम रूप से स्वीकार्य माना गया है। पश्चिमी विद्वानों के अनुसार पंतजलि ईसापूर्व दूसरी शती में हुए थे। युधिष्ठिर मीमांसक उनका समय विक्रम पूर्व संवत् 2000 से 1200 के बीच मानते हैं।

पाणिनी द्वारा प्रतिपादित व्याकरण के पठन पाठन की पद्धति का स्थान 16वीं शताब्दी में कुछ हद तक कातंत्र पद्धति लेने लगी थी। इस परंपरा में भटोजी दीक्षित कृत सिद्धांतकौमुदी और नारायण भट्ट कृत प्रक्रिया सर्वस्व अधिक प्रसिद्ध है। दर्शन के क्षेत्र में भी व्याकरण का

विकास हुआ और इसका प्रारम्भ मत्तूरि द्वारा किया गया जो छठी शताब्दी में हुए थे।

छन्दशास्त्र के पूर्ण ज्ञान की सूचना वैदिक रचना विधान से मिलती है। वैदिक छंद रचना का प्रथम विवेचन शांखायन श्रौतसूत्र में मिलता है लेकिन महर्षि पिंगल का छन्दशास्त्र अप्रतिम शास्त्रीय ग्रंथ है। पिंगल ने छंदों का अध्ययनविवेचन अपने ग्रंथ छन्दः सूत्र के आठ अध्यायों में किया है। इस ग्रंथ में उन्होंने न केवल वैदिक छंदों अपितु इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार के छंदों का भी विवरण दिया है। मुख्य वैदिक छंद सात हैं, इन्हें गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, बृहति, पंक्ति, त्रिष्टुभ और जगती के नाम से जाना जाता है। कात्यायन के अनुसार वेद में मंत्रों की सर्वाधिक संख्या त्रिष्टुम् छंदों की पाई जाती है। इनकी संख्या 4253 है। गायत्री छन्द में 2467 मंत्र, जगती में 1350 मंत्र, अनुष्टुप् में 855 मंत्र, उष्णिक में 341 मंत्र, पंक्ति में 312 और बृहती में 181 मंत्र हैं। यद्यपि छंदों के संख्या बहुत है किन्तु संस्कृत साहित्य में केवल 1150 छंद पाये जाते हैं।

पिंगलाचार्य से पूर्व छन्दशास्त्र के कई महान आचार्य जैसे कौष्टुकी, यास्क, काश्यप और माण्डव्य आदि हो चुके हैं। पिंगलाचार्य के छंदःसूत्र पर भी अनेक टीकायें हुई हैं। वस्तुतः संस्कृत साहित्य में छन्दशास्त्र पर ग्रंथों की संख्या का उत्तरोत्तर विकास होता गया है।

संगीतशास्त्र का विकास छंदशास्त्र का बहुत ऋणी है। यह तो भली भांति ज्ञात है कि सामवेद की रचना गाने के लिए ही हुई थी। यद्यपि सामवेद के गाने की पद्धति शास्त्रीय संगीत के गाने की पद्धति से भिन्न है तथापि सात स्वर षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद का प्रयोग सामवेद में भी उसी प्रकार होता है जैसे शास्त्रीय संगीत में होता है। सामवेद से संबद्ध छान्दोग्योपनिषद् में सामवेद के पाँच प्रकार की प्रस्तुतियों को निर्देश है यथा हिंकार, प्रस्ताव, उदगीथ, प्रतिहार और निष्पान। यह ध्यातव्य है कि वैदिक साहित्य में वीणा सहित अनेक वाद्ययंत्रों का उल्लेख मिलता है। सामाजिक जीवन में भी संगीत और

धार्मिक कृत्यों की घनिष्ठता के कारण अनेक रागों का विकास हुआ विशेषता छह ऋतुओं के अनुसार छह रागों का। संगीत की सन्निकटता में नृत्य और नाटक का भी विकास हुआ। संगीत, नृत्य और नाटक से संबंधित संस्कृत रचनाओं में सबसे महत्वपूर्ण भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र है। नाट्यशास्त्र की दो संहितायें हैं—द्वादश साहस्री और शतसाहस्री। भरतमुनि द्वारा प्रवर्तित परंपरा हजार वर्षों से भी अधिक समय तक प्रचलित रही। तेरहवीं शताब्दी में सारंगदेव ने अपनी पुस्तक 'संगीतरत्नाकर' में भरतमुनि की प्रामाणिकता स्वीकार की है। इसके उपरान्त भी संगीत, नृत्य और नाटक पर प्रभूत साहित्य उपलब्ध होता है। वस्तुतः संगीत, नृत्य और नाटक का प्रत्येक युग में राजाश्रय प्राप्त होता रहा और उत्तर तथा दक्षिण भारत के कई सम्राट स्वयं महान संगीतज्ञ थे।

शिक्षा, छन्द और व्याकरण से घनिष्ठ रूप से संबद्ध साहित्य प्रातिशाख्य के नाम से ख्यात है। प्रत्येक वेद और शाखा से संबंधित कुछ निश्चित नाम हैं। ये नियम उच्चारण, छन्द, व्याकरण और अन्य अनेक विविध विषयों से संबंधित हैं। प्रातिशाख्य में वेद का अर्थ भी संकेतित है। इसलिए यह संबंधित वेद के अध्ययन में सहायक माना जाता है। ऋक् प्रातिशाख्य ऋग्वेद की शाकल शाखा की शैशीरीय उपशाखा का विवेचन करता है। इसके कर्ता महर्षि शौनक हैं। महान भाष्यकार उवट ने इस प्रातिशाख्य का भाष्य लिखा है ऐसा माना जाता है कि ऋक् प्रातिशाख्य की रचना ईसापूर्व 5वीं 6ठी शताब्दी की बीच हुई।

वाजसनेयी प्रातिशाख्य की रचना कात्यायन ने की जो पाणिनी से पूर्व हुए थे। कात्यायन के प्रातिशाख्य की व्याख्या के लिए उवट और अनंतभट्ट ने क्रमशः मातृवेद और पदार्थी प्रकाशक की रचना की। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य का संबंध कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता से है। इस पर माहिषेय ने टीका की है जिसे 'पदक्रमसदन' के नाम से जाना जाता है।

पुष्पसूत्र और अक्तंत्र नामक दो प्रातिशाख्य सामवेद के हैं। पुष्पसूत्र के कर्ता वरूचि और ऋक्तंत्र को शाकययन माने जाते हैं।

अथर्ववेद का प्राचीनतम प्रातिशाख्य चतुराध्यायिका है, कौत्स को इस प्रातिशाख्य का कर्ता कहा जाता है जो कौत्स व्याकरण के नाम से भी जाना जाता है।

छठा वेदांग ज्योतिष है जो खगोल शास्त्र और गणित ज्योतिष से संबंधित है। ज्योतिष को प्रकाश का विज्ञान माना जाता है और इसे वेदांगों में नेत्र की संज्ञा दी जाती है। वैदिक प्रज्ञा ने ब्रह्माण्डीय गति में एक आंतरिक लय की खोज की थी और यह लय मानव जीवन की ऋतुओं और कालक्रमिक विकास के अनुकूल प्रतीत होती है। काल की कल्पना क्रिया की ऐसी निरंतरता के रूप में की गई जो मनुष्य को इच्छाओं के स्फुरण विकास और पूर्ति का मापक है चूंकि मानव की मनोकामनायें और यज्ञ एक दूसरे से घनिष्ट रूप से जुड़े थे इसलिए यज्ञ के प्रारम्भ और पूर्णाहुति के मुहूर्त का निर्धारण बड़ा महत्वपूर्ण समझा जाता था। परिणामतः नक्षत्रों का परिवर्तन, दिन और रात्रि की गणना तथा विभिन्न ऋतुओं राशियों की गणना पर बहुत ध्यान दिया जाता था। ज्योतिष शास्त्र में ग्रहों, राशियों, राहुकेतु और अन्य आकाशीय नक्षत्रों के आवर्तनविवर्तन आदि का वर्णन किया जाता है। ग्रहनक्षत्रों की गतिविधि के अनुसार ही मानव जीवन के शुभ अशुभ परिणामों की भविष्यवाणी की जाती है, यह खगोलशास्त्र पर आधारित है।

लग्नाचार्य को ऋग्वेद ज्योतिष वेदांग का कर्ता माना जाता है। इसमें 36 छंद हैं। यजुर्वेद और अथर्ववेद से संबंधित ज्योतिष वेदांग हैं। यजुर्वेद ज्योतिष में 34 छंद हैं और इसके कर्ता श्रोशाचार्य हैं। अथर्ववेद ज्योतिष में 14 अध्याय और 102 छन्द है। यह वक्ता पितामह और श्रोता काश्यप का संवाद माना जाता है।

भारत के महानतम् खगोलशास्त्री और गणित ज्योतिष के ज्ञाताओं में वराहमिहिर का नाम विख्यात है। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक पंचसिद्धान्तिका में ज्योतिष की पाँच पद्धतियों का उल्लेख मिलता है तो अधोलिखित हैं

पितामह सिद्धान्त, वशिष्ट सिद्धान्त, रोमक सिद्धान्त, पौलिस सिद्धान्त और सूर्य सिद्धान्त। कालान्तर में ज्योतिष ने अनेक विज्ञानों गणित, बीज गणित, ज्यामिति, ज्योतिष गणित और खगोलशास्त्र के विकास की प्रेरणा दी। भास्कराचार्य (12वीं शती) को मध्ययुग के गणितज्ञों और ज्योतिषज्ञानियों में प्रथम माना जाता है। ज्योतिष आज भी समूचे भारत में प्रचलित है और अब भी यह एक विकासमान विज्ञान है। पंचांग, जो तिथि, वार नक्षत्र, योग और करण का विस्तृत व्यौरा देता है, का प्रयोग अधिकांश भारतीय परिवारों में बराबर होता है और दैनंदिन जीवनचर्या में भी प्रायः सामान्य जनों और ज्योतिषियों द्वारा वार्षिक पंचांग का ध्यान रखा जाता है।

इस वेदांग के अलावा अन्य चार शास्त्र और कलायें हैं जिन्हें उपवेद कहा जाता है। ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद है। यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद है, सामवेद का गन्धर्ववेद और अथर्ववेद का उपवेद अथर्ववेद है। आयुर्वेद का संबंध आयु के रहस्य और दीर्घायु के पौष्ण रक्षण और देखरेख की कला या विज्ञान से है। आयुर्वेद के आधिककर्ता धन्वन्तरि माने जाते हैं। उनके अलावा आत्रेय, काश्यप, हासीत, अग्निवेश और भेदामुनि के नाम प्रमुख हैं। इस समय आयुर्वेद की तीन महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं—चरकसंहिता, सुश्रुत संहिता और वाग्भट्ट संहिता—इन तीनों का सामूहिक नाम बृहत्त्रयी है।

धनुर्वेद युद्धकला और अस्त्रशास्त्र से संबंधित अति प्राचीन शास्त्र प्रतीत होता है। रामायण और महाभारत में युद्धों के वर्णन और युद्धशास्त्र या कला पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। धनुर्वेद की अति प्राचीन पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं लेकिन कुछ पुस्तकें ज्ञात हैं उनमें धनुर्विधि, द्रौण विद्या, कोदण्डमंडन और धनुर्वेद संहिता प्रमुख हैं। परंपरा के अनुसार धनुर्वेद के प्रारम्भकर्ता स्वयं महादेव हैं। द्रोणाचार्य ने यह शास्त्र परशुराम से सीखा और अर्जुन ने इसे द्रोणाचार्य से प्राप्त किया। अर्जुन से यह कला सात्यनि ने सीखी।

गन्धर्व वेद सामवेद से प्राप्त संगीत का शास्त्र है। इस विषय का संक्षिप्त विवेचन छंद शास्त्र के विवेचन के समय हम पहले ही कर चुके हैं।

अथर्ववेद अथर्ववेद का उपवेद है जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था का वर्णन किया गया है। इसमें स्थापत्य के साथ कई अन्य कलाओं का भी उल्लेख मिलता है। शुक्रनीति के अनुसार अनेकानेक कलायें हैं किन्तु इनमें 64 कलायें अधिक महत्वपूर्ण मानी गई हैं। परवर्ती साहित्य में हम पाते हैं कि इन 64 कलाओं का अर्जन किसी भी सुसंस्कृत महिला के लिए अपेक्षित समझा जाता था। इनमें पाककला, शरीर में अंगराग लेपनमर्दन और दाँत रंगने की निपुणता, संगीत, नृत्य, चित्रकला, हार गूथना, फर्श पर अल्पना रचना, शय्या शृंगार, वस्त्राभूषणों की उचित देखभाल तथा प्रयोग सिलाई, बढ़ईगीरी, धरेलू उपकरणों, औजारों की मरम्मत, विभिन्न भाषाओं का पढ़ना, लिखना और समझना, काव्यरचना, नाट्यप्रेक्षण, व्यायाम, अवकाश के क्षणों का उपयोग करते हुए मनोरंजन और बच्चों के लिए गुड़िया खिलौने बनाना इत्यादि परिगणित हैं।

अर्थशास्त्र पर सबसे प्रसिद्ध पुस्तक कौटिल्य की है। यह पुस्तक अधिकारिक मानी जाती रही है और इसके पश्चात् लिखी अनेक पुस्तकें इसी पर आधारित हैं। कौटिल्य से पूर्व भीष्म और विदुर के प्रसिद्ध विवेचन भी इस विषय पर उपलब्ध हैं।

वेद को सम्यक रूप से समझने के लिए न केवल वेदांग बल्कि इतिहास और पुराणों की भी संस्तुति की गई है। इतिहास की दृष्टि से रामायण, महाभारत और पुराणों को पढ़ा जाता है। लेकिन भारतीय साहित्य में इतिहास शब्द द्वारा मुख्यतः महाभारत का निर्देश है। महर्षि वाल्मीकि रामायण के रचयिता हैं और महाभारत महर्षि वेदव्यास द्वारा विरचित है। सबसे प्राचीन रचना वेद है फिर भी पुराण को इसलिये पुराण कहा जाता है क्योंकि इसमें अति प्राचीन ज्ञान को स्थान मिला है। ऐसा कहा जाता है कि पुराणों में वर्णित ज्ञान ब्रह्मा को परब्रह्मा से

प्राप्त हुआ था। ब्रह्मा ने इसे सनतकुमार सहित अपने चार मानसपुत्रों को दिया। सनतकुमार से यह ज्ञान नारद ने प्राप्त किया और उन्होंने यह ज्ञान कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास को दिया। वेदव्यास ने इस ज्ञान को 18 पुस्तकों के रूप में प्रस्तुत किया। इन्हीं पुस्तकों को पुराण कहा जाता है।

निम्न सारणी में इन पुराणों का नाम तथा उनमें से प्रत्येक की छंद संख्या उनके सामने दी जा रही है

ब्रह्मपुराण 10000 छंद, पद्मपुराण 55000 छंद, विष्णुपुराण 23000, शिवपुराण 24000 छंद, भागवत पुराण 18000 छंद, नारदपुराण 25000 छंद, मार्कण्डेय पुराण 25000 छंद, अग्निपुराण 10500 छंद, भविष्यपुराण 14500 छंद, ब्रह्मवैवर्तपुराण 18000 छंद, लिंगपुराण 11000 छंद, वाराहपुराण 24000 छंद, स्कंद पुराण 81000 छंद, वामन पुराण 10000 छंद, कूर्मपुराण 17000 छंद, मत्स्य पुराण 14000 छंद, गरुड पुराण 19000 छंद, ब्रह्माण्डपुराण 12000 छंद।

नरसिंह, नंदी, भार्गव आदि की तरह अनेक उपपुराण भी हैं। वेदों का अर्थ साधारण जनता को समझाने के लिए पुराणों की रचना हुई ताकि उनके जीवन में दिव्यज्ञान के प्रति संवेदनशीलता जाग्रत की जा सके और उनमें परमणिता के प्रति भक्ति जाग्रत की जा सके। पुराणों में संसार का सृजन, विकास और संहार का वर्णन है। अनेक पुराणों में पृथ्वी और इसके भूगोल का विस्तृत वर्णन है और उनमें अनेक पुराकथाओं के अलावा जन्म, मृत्यु और शरीरपात के पश्चात् आत्मा की स्थिति का रहस्यमय ज्ञान वर्णित है। दार्शनिक और योगविषयक प्रश्न तथा उनके उत्तर भी हमें इनमें उपलब्ध होते हैं। सबसे प्रधान बात यह है कि पुराणों में बड़े-देवों ब्रह्मा, विष्णु और शिव का वर्णन है। भागवत पुराण भगवान् कृष्ण पर सबसे अनमोल पुस्तक मानी जाती है, यह कृष्ण चरित और कृष्णभक्ति पर बेजोड़ रचना है। पुराणों का संबंध अन्य अनेक देवों और अतीत के ऋषियों से है। पुराणों का महत्वपूर्ण

अवदान अवतार की अवधारणा और परम्प्रभु के विविध अवतारों का वर्णन है।

पुराण साहित्य बड़ा विशाल है और इसने भारतीय धार्मिक और आध्यात्मिक मानस पर अमिट छाप छोड़ी है।

भारत में दर्शन की परंपरा अत्यन्त प्राचीन काल में प्रारम्भिक युग तक जाती है और वेदों पर आधारित दर्शन की अनेक पद्धतियां विकसित हुई हैं। ये पद्धतियां हैं न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा और उत्तर मीमांसा। दर्शन की ये सभी पद्धतियां वेद को प्रमाण और आधिकारिक मानती हैं। यद्यपि इनमें परस्पर मतपार्थक्य है किन्तु इनमें समन्वय का प्रयत्न किया गया है। इन पद्धतियों पर लिखा साहित्य सूत्रों में मिलता है जिनके कर्ता महान दार्शनिक गौतम, कणाद, कपिल, पंतजलि, जैमिनी और बादरायण माने जाते हैं। और इन पर प्रभूत परिमाण में टीकायें उपलब्ध हैं। दर्शन की इन पद्धतियों पर व्याख्या और भाष्य वास्तव में आधुनिक काल में भी लगातार हो रहे हैं।

Vedic Literature:

A Brief Overview

I

The antiquity of the Veda has been a subject of discussion and dispute. According to the ancient Indian tradition it is impossible to determine the period of the composition of the Veda. It is, however, universally acknowledged by historians that the Veda is the earliest available collection of the most ancient body of knowledge. According to one Indian historian, Shri Avinash Chandra Das, the Veda could have been composed any time between 250 and 750 BC. According to Lokamanya Tilak, the estimated period would be any time between the forty-fifth and fiftieth centuries BC. This coincides with the view of Professor Haug, Professor Ludwig and Professor Jacobi. Professor Whitney places this period and time between the fifteenth and twentieth centuries BC, while Professor Weber places it any time between the twelfth and fifteenth centuries BC. Professor Max Müller believes that the Veda was composed during the thirteenth century BC.

According to the *Bṛhadāraṇyakopaniṣad*, all the four Vedas, the *Ṛg-Veda*, *Yajur-Veda*, *Sāma-Veda* and *Atharva-Veda*, are the breath of the Supreme Lord.

अस्य महतो भूतस्य निःशसितम् एतद् यद् ऋग्वेदो
यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वागिरसः।

According to *Manu Smṛti*, the entire Veda is luminous with knowledge (सर्वज्ञानमयो हि सः). It is believed that in its original condition the Veda was one, and it was Rishi Vyāsa who divided it into four parts. For this reason, Rishi Vyāsa is known as Vedavyāsa. The four Vedas have been divided in many ways under the categories of *mandala*,

ashtaka, *varga*, *sukta*, *anuvāk*, *khānda*, *prashna*, *chhanda*, etc. Every word of the poetic and prose composition of the Veda has been counted and fixed. The entire collection of *mantras* is called 'Saṃhitā'. According to one view, the word Veda is applicable to both the collection of *mantras* (inevitable expression of poetic inspiration and revelation) and the Brāhmaṇas. The Brāhmaṇas are supposed to be a detailed analysis and commentary on the collection of *mantras*. The Brāhmaṇas again are divided into three parts: (i) Brāhmaṇas, (ii) Āraṇyakas and (iii) Upaniṣads. In the Brāhmaṇas, there is a detailed statement and explanation of various kinds of sacrifices and their ceremonies and rituals. The Āraṇyakas are much more esoteric and the Upaniṣads expound the knowledge contained in the Vedas. The Upaniṣads are also called Vedānta. At a later period, Rishi Bādarāyaṇa Vyāsa composed the *Brahma-sūtra* or *Sarīrak-sūtra* in order to present the Upaniṣads in an organized form. At a still later period, the *Bhagavadgīta* was composed as a part of the great *Mahābhārata* and it is considered to be the quintessence of the Upaniṣads. The *Upaniṣad*, *Brahma-sūtra* and *Bhagavadgīta* are collectively *Prasthanatrayi*.

Vedic literature mainly consists of *Mantra Saṃhitā*, Brāhmaṇas, Āraṇyakas and Upaniṣads. In understanding the *Mantra Saṃhitā*, the study of Brāhmaṇas, Āraṇyakas and Upaniṣads is considered to be essential, and the study of the *Brahma-sūtra* and *Bhagavadgīta* is also considered to be necessary. Vedic literature also includes six additional works which are supposed to be aids in understanding the Veda. They are: (i) *śikṣā*, (ii) *kalpa*, (iii) *vyākaraṇa*, (iv) *nirukta*, (v) *chhanda* and (vi) *jyotiṣa*. Each one of them is called Vedāṅga.

Connected with the rituals and ceremonies of Vedic sacrifices (Vedic *karmakānda*), is the Vedāṅga known as *Kalpa*. The *Kalpa Vedāṅga* is in the form of a *sūtra*, and it is thus aphoristic in character. The totality of the *Kalpa*

Vedāṅga and its literature is three-fold, consisting of the *Śrauta-sūtra*, *Grhya-sūtra* and *Dharma-sūtra*. For each Veda there are separate systems of *Śrauta-sūtra*, *Grhya-sūtra* and *Dharma-sūtra*. Some of the famous *Śrauta-sūtras* are *Śāṅkhāyana*, *Āśvalāyan*, *Ārsheya*, *Āpastamba*, *Baudhāyana*, and *Kātyāyana*. Among the *Grhya-sūtras* are included *Śāṅkhāyāna*, *Hiraṇyakeṣi*, *Āpastamba*, *Baudhāyana*, *Kāthaka*, *Pārāskāra*, *Kauśika*, etc. Among the *Dharma-sūtras* are included *Gautama Dharma-sūtra*, *Āpastamba Dharma-sūtra*, *Hiraṇyakeṣi Dharma-sūtra*, *Baudhāyana Dharma-sūtra*, *Vasiṣṭha Dharma-sūtra*.

In addition to these three categories of *Kalpa-sūtras*, there is a fourth category known as *Shulba-sūtra* which is regarded to be the origin of the ancient science of geometry. The three most famous *Shulba-sūtras* are those of *Āpastamba*, *Baudhāyana* and *Kātyāyana*. As in the case of *Kalpa Vedāṅga*, each of the *Vedāṅgas* has further subsidiary literature. All this and much more may be regarded to constitute the vast Vedic literature. *Itihāsa*, *Purāṇas* and Vedic systems of philosophy also are included as parts of Vedic literature.

II

But, as mentioned above, the core of Vedic literature consists mainly of *Mantra Samhitā*, *Brāhmaṇas*, *Āraṇyakas* and *Upaniṣads*.

Among the Vedas, the *Ṛg-Veda* occupies a prominent place. The *Ṛg-Veda* consists of 10 books or *mandalas* and 1,017 hymns or *sūktas*. The total number of verses in the *Ṛg-Veda* is 10,580. Even the words and letters of the *Ṛg-Veda* have been counted. The number of words in the *Ṛg-Veda* is 1,53,826 and the number of letters is 4,32,000. Some of the great poets who have received the *mantras* include *Vasiṣṭha*, *Viśvāmitra*, *Vāmadeva*, *Bhāradwāja*, *Atri*, *Madhuchhandas*. Six each of the *mandalas* or books are

given to the hymns of a single *rishi* or family of *rishis*. Thus the second *mandala* is devoted chiefly to the *sūktas* of Rishi Gritsamada, the third and the seventh similarly to the great Viśvāmitra and Vaśiṣṭha, respectively, the fourth to Vāmadeva, the sixth to Bhāradwāja. The fifth is occupied by the hymns of the house of Atri. In each of these *mandalas* the *sūtras* addressed to Agni are first collected together, followed by those of which Indra is the deity; the invocations of other gods, Bṛhaspati, Sūrya, the Ribhus, Uṣā, etc., close the *mandalas*. The whole book, the ninth, is given to a single god, Soma. The first, eighth and tenth *mandalas* are a collection of *sūtras* by various *rishis*, but the hymns of each seer are ordinarily placed together in the order of their deities, Agni leading, Indra following, the other gods succeeding.

We can also see a certain principle of thought development in the arrangement of the Vedic hymns. The opening *mandala* seems to have been so designed that the general thought of the Veda in its various elements should correctly unroll itself under the cover of the established symbols by the voices of a certain number of *rishis* almost all of whom rank high as thinkers and sacred singers and some of whom are among the most famous names of the Vedic tradition. It is also significant that the tenth or closing *mandala* gives us, with an even greater miscellaneity of authors, the last development of the thought of the Veda, and some of the most modern in the language of its *sūtras*. It is here that we find the 'sacrifice of Purusha' and the great 'hymn of the Creation'. It is here also that modern scholars think that they discover the first origins of Vedāntic philosophy, the *Brahmavāda*.

Sacrifice was the principal institution and symbol of the Vedic tradition and knowledge. Sacrifice or *yajña* symbolizes inner submission, consecration and surrender to higher powers, gods and the Supreme. Outwardly, this

submission was translated into an elaborate ritual of collecting sacrificial materials, lighting them in order to kindle the sacrificial fire and offering to that fire articles of various kinds, including clarified butter, grains and other materials. This entire procedure was accompanied by recitation of appropriate *mantras* or hymns, sung in a prescribed methodical manner, often marked by appropriate hand movements and other gestures or *mudrās*. The esoteric teaching of the Veda included the idea that human life is a journey, looked upon as a journey of sacrifice to be performed with minute care and attention to discipline and self-control by means of which obstacles in the journey can be overcome and many-sided achievements at various levels of existence can be attained. A close connection was conceived between the word, the idea and the reality, and it was supposed that words opened up the gates of ideas and ideas opened up the gates of the realization of reality. It was against this background that the ritual of *yajña* was perfected in great detail, and apart from the worship, great attention was paid to the performance of sacrifice. The priest who performed the entire procedure of the sacrifice was called *Adhvaryu*, and the *mantras* which were used by the *Adhvaryu* in the performance of *yajña* constituted the *Yajur-Veda*. The *Yajur-Veda* is therefore also called *Adhvaryu-Veda*. *Yajur-Veda* is principally a composition in prose.

According to the *Matsyapurāṇa*, the *Yajur-Veda* was the only Veda in the beginning. The same view is repeated in the *Vayupurāṇa* and *Viṣṇupurāṇa*. It was Vedavyāsa who arranged the four *Samhitās* according to the requirements of the processes of symbolic sacrifice, and he transmitted the *Ṛg-Veda* to Paila, the *Yajur-Veda* to Vaishampāyana, the *Sāma-Veda* to Jaimini, and the *Atharva-Veda* to Sumantu. In due course, they transmitted them to their pupils, and thereafter there developed the

tradition of transmission by oral tradition from teacher to pupil. In this fashion, there came about a development of various recensions or *śākhās* of various Vedas. In the *Bhāgavata* and in several *Purāṇas* there is a detailed description of the various *śākhās* of the Vedas; we have a similar description in *Śāntiparva* (Chapter 342) of the *Mahābhārata*; we also have organized information on the *śākhās* of the Vedas in *Caranavyūha*. There are three notable books of the *Caranavyūha* attributed, respectively, to Shaunaka, Kātyāyana and Vyāsa.

The total number of *śākhās* are believed to be 1,131, but at present only 10 *śākhās* remain alive. As far as the *Ṛg-Veda* is concerned, only one *śākhā*, *Shākala śākhā*, remains alive out of the 21 which existed at one time. There is a claim that *Saṅkhyāyana śākhā* is still known to a few Vedapāthis in Uttar Pradesh and Gujarat, but this is not certain. As far as the *Yajur-Veda* is concerned, Patanjali had declared in his great *Vyākaraṇa Mahābhāṣya* that it had 101 *śākhās*. But today only 5 *śākhās* are alive. In fact, the *Yajur-Veda* is classified broadly into *Śukla Yajur-Veda* and *Kṛṣṇa Yajur-Veda*. *Śukla Yajur-Veda* is also known as *Vājasaneyi*. The *Vājasaneyi Saṃhitā* has 30 *adhyāyas* or chapters, 303 *anuvaks*, 1,975 *kandikās*, 29,625 words, and 88,875 letters. There are two extant *śākhās* of *Śukla* or *Vājasaneyi Yajur-Veda*, namely, *Kānva* and *Mādhyandina*. The *Kṛṣṇa Yajur-Veda* has 5 extant *śākhās*, namely, *Āpastamba* (*Taittirīya*), *Hiraṇyakeśi* (*Kapishthala*)*, *Kathā**, *Kāthaka*, and *Kālāpa* or *Maitrāyanī*. The *Maitrāyanī Saṃhitā* has 4 *kāṇḍas* which are subdivided into *prapāthakas*. In this *Saṃhitā*, there are 3,144 *mantras*, of which 1,701 are *ṛks* from the *Ṛg-Veda*. In this *Saṃhitā* we have *mantras* and rituals of important sacrifices like *Cāturmāsya*, *Vājapeya*, *Aśwamedha*, *Rājasūya*, *Sautrāmani*,

*Incomplete versions only are available.

etc. The *Taittirīya Samhitā* has 7 *kāndas*, 44 *prapāthakas* and 631 *anuvaks*. In this *Samhitā* we have a description of sacrifices like *Rājasūya*, *Yajamāna*, *Paurodāsha*, etc.

Apart from *Adhvaryu*, there is also an *Udgātā* in a sacrifice, who sings certain specific *mantras*. The collection of *mantras* meant for *Udgātā* has been called the *Sāma-Veda*. Both in *Caranavyūha* and in *Patanjali Mahābhāṣya* it is indicated that the *Sāma-Veda* has 1000 *śākhās*. The *Sāma-Veda* is musical in character, and it contains only those *ṛks* which can appropriately be sung. There are 1,549 *ṛks* in *Sāma-Veda*, and only 75 of them are independent of the *Ṛg-Veda*. At present, the *Sāma-Veda* has only 3 existing *śākhās*, namely *Kauthuma*, *Rānāyaniya*, and *Jaiminiya*.

The *ṛks* are transformed into songs of *Sāma* by appropriate addition of words or *stobhas*, such as *hā*, *u*, *ho*, *i*, *o*, *hu*, *oh*, *ou*, *hā*, etc.

Apart from 'Hotā' connected with the *Ṛg-Veda*, 'Adhvaryu' connected with the *Yajur-Veda*, 'Udgātā' connected with the *Sāma-Veda*, there is a fourth priest called *Brahmā* who is supposed to be a specialist in all the four Vedas, including the *Atharva-Veda*. The *Ṛg-Veda*, *Yajur-Veda* and *Sāma-Veda* are collectively called *Vedatrayi*, and the *Atharva-Veda* is not included in the *Vedatrayi*, although it has a significant place in the *Karmakāṇḍa* of the Vedas. The *Atharva-Veda* is also known as *Atharvāṅgīrasa*. The *Atharva-Veda* has two kinds of *mantras*, those relating to the cure of diseases and destruction of wild animals, *piśācas* and enemies, and those relating to establishment of peace in the family and village as also those relating to health, wealth, protection, and friendship with enemies. The origin of *Āyurveda* is to be found in the *Atharva-Veda*.

The *Samhitā* of the *Atharva-Veda* has 20 *kāndas* which have 34 *prapāthakas*, 111 *anuvaks*, 739 *sūktas* and 5,849 *mantras*. About 1,200 *mantras* are common with those of

the *Ṛg-Veda*. One-sixth of the *Atharva-Veda* is in prose style while the rest is poetic.

Patanjali has indicated that the *Atharva-Veda* has 9 *śākhās*, but today we have only 2 *śākhās*, namely, Paippalāda and Śaunaka.

Apart from the four Vedas and their numerous *śākhās*, there is a vast literature of Brāhmaṇas. The appendices of the Brāhmaṇas which are partly in prose and partly in poetic form are called Āraṇyakas. Āraṇyakas are so called because there was a tradition to study them in forests. Some Upaniṣads are also included in Āraṇyakas; hence it is almost impossible to make a definite boundary-line between Āraṇyakas and Upaniṣads. Brāhmaṇas contain a detailed analysis of various categories of sacrifices, their rituals and procedures. Brāhmaṇas include collections of history, legends, anecdotes and narration of stories connected with individuals. A synonym of the word 'Brāhmaṇas' is 'Pravachana'. *Pravachana* means exposition; hence Brāhmaṇas are looked upon as expositions of various aspects of the Vedas. The Brāhmaṇa literature seems to have been very vast but a number of Brāhmaṇas have been lost.

Each of the recensions of the Vedas had a separate Brāhmaṇa. Brāhmaṇas were instructed simultaneously with the different recensions of the Vedas. The *Aitareya Brāhmaṇa* belongs to the *Shākala śākhā* of the *Ṛg-Veda*, while the *Kaushitaki (Śāṅkhāyana) Brāhmaṇa* is connected with the *Śukla Yajur-Veda*, and the *Taittirīya Brāhmaṇa* is connected with *Bashkala śākhā* of the *Ṛg-Veda*. The *Śatapatha Brāhmaṇa* is connected with *Śukla Yajur-Veda*, while *Taittirīya Brāhmaṇa* and *Kāthaka Brāhmaṇa* are connected with the *Kṛṣṇa Yajur-Veda*. The *Sāma-Veda* has several Brāhmaṇas including *Jaiminiya*, *Arsheya*, *Mantra*, *Sāmavidhāna*, *Devatādhāya Vansha*, *Panchavinsha Shadavinsha*. The *Gopatha Brāhmaṇa* belongs to the *Atharva-Veda*.

Among the lost Brāhmaṇas, the important ones are *Paingāyāni Brāhmaṇa*, *Āśvalāyana Brāhmaṇa*, *Kāthava Brāhmaṇa*, *Gālav Brāhmaṇa*, *Carak Brāhmaṇa*, *Śwetāshvatara Brāhmaṇa*, *Kāthava Brāhmaṇa*, *Maitrayāni Brāhmaṇa*, *Jhābālak Brāhmaṇa*, *Khāndikeya Brāhmaṇa*, *Rauraki Brāhmaṇa*, *Shatyāyana Brāhmaṇa*, *Talavakra Brāhmaṇa*, *Āruneya Brāhmaṇa*, *Pārāshara Brāhmaṇa*, and *Kāpeya Brāhmaṇa*.

According to many ancient scholars, the hymns of the four Vedas and their explanations in the Brāhmaṇas both together constitute the Veda. The Brāhmaṇas have been throughout respected as the Vedas themselves. The rituals have been performed considering the Brāhmaṇas as equal to the Vedas. In the nineteenth century, however, Maharshi Dayananda Saraswati expressed the view that the Brāhmaṇas are not the Vedas themselves. According to him, while the Vedas were revealed, the Brāhmaṇas were not, although they were expressed by the seers. He advanced a number of reasons to establish his viewpoint, and they deserve an impartial study. In any case, it has to be stated that the language of the Brāhmaṇas is not similar to that of the Vedic hymns. Some believe that Brāhmaṇas contain an explanation of the Veda and they are couched in the language of *Pravachana*. They are therefore Vedic, but not the Vedas themselves. There is, however no dispute about the fact that Brāhmaṇas are looked upon as elucidation or interpretations of Veda, and this itself implies the superiority of the Veda as far as the question of authenticity is concerned.

There is no doubt that the Brāhmaṇas were much more close in time to the Vedas than any other Vedic literature; at the same time, it is well known that the Brāhmaṇas concentrated on *Karmakāṇḍa* rather than on *Jñānakāṇḍa*. As far as *Jñānakāṇḍa* is concerned, we have a vast literature of Āraṇyakas and Upaniṣads. Āraṇyakas and Upaniṣads are collectively called Vedānta, since they

constitute the last part of the fundamental core of Vedic literature.

The main subject dealt with in the *Āraṇyakas* is the esoteric meaning of sacrifices, their rituals as also the inner meaning of the conduct related to the system of *varnāśrama*. The *Aitareya* and *Kaushitaki* *Āraṇyakas* are related to the *R̥g-Veda*, the *Taittirīya* and *Śāṅkhayāyana* *Āraṇyakas* are related to the *Kṛsna Yajur-Veda*, while *Brhadāraṇyaka* is related to *Śukla Yajur-Veda*. *Talavakara* *Āraṇyaka* belongs to *Jaiminiya śākhā* of *Sāma-Veda*; and in fact this *Āraṇyaka* is *Jaiminiya-Brāhmaṇopaniṣadbṛāhmaṇa*, and this *Brāhmaṇa* contains *Āraṇyaka* and *Upaniṣad* as well.

The most important *Āraṇyaka* is the *Aitareya* *Āraṇyaka* of the *R̥g-Veda*. This *Āraṇyaka* consists of 18 chapters, and each chapter is divided into a number of *khandas*. As mentioned earlier, *Āraṇyakas* deal with the inner meanings of various sacrifices, observances and rituals.

The spiritual meaning of the Veda is largely to be found in *Upaniṣads*. The word *Upaniṣad* really means the secret teaching that enters into the ultimate truth. This secret is normally transmitted and received when the disciple sits close to the teacher, and when the consciousness of the teacher and pupil vibrates in harmony, so that even in silence the secret truth can be transmitted and received. Among the *Upaniṣads* the following 10 are considered to be most important: *Isha*, *Kena*, *Katha*, *Prasna*, *Mundaka*, *Māndukya*, *Taittirīya*, *Chhāndogya*, *Aitareya*, and *Brhadāraṇyaka*. Śāṅkarācārya has also referred to 5 other *Upaniṣads* in his commentaries, and these 5 also have been given prominence as far as the spiritual knowledge of the ultimate reality is concerned. They are: *Śvetāshvatara*, *Mahānārāyaṇa*, *Maitrāyāni*, *Kauṣitaki*, and *Nṛisimhatāpinī*.

In the *Muktopaniṣad*, it is mentioned that the total number of *Upaniṣads* is 108, and they are derived from

the four Vedas as follows: (i) *Ṛg-Veda*: 10 Upaniṣads, (2) *Śukla Yajur-Veda*: 19 Upaniṣads, (3) *Kṛṣṇa Yajur-Veda*: 32 Upaniṣads, (4) *Sāma-Veda*: 16 Upaniṣads, and (5) *Atharva-Veda*: 31 Upaniṣads. The *Muktopeniṣad* also lays down that the process of the realization of Brahman, the ultimate reality, begins with *Brahmajijnāsa*, aspiration to know Brahman, and it continues through the hearing of the Upaniṣads, reflection on the Upaniṣads and dwelling on the Upaniṣads.

Isha, *Kena*, *Kathā*, *Manduka*, *Śwetāśvatara* and *Mahānārāyaṇa* are poetic compositions and they have great literary merits. The *Atharva-Veda* has many Upaniṣads, and among these Upaniṣads there are some which are even non-Vedic, in the sense that they have connection with the Purāṇas and Tantra. If the entire Upaniṣadic literature is taken into account, there are at least 250 Upaniṣads.

The important Upaniṣads and their connections with the Vedas may briefly be stated as follows:

Aitareya, *Māndukya* and *Kaushitaki* are related to the *Ṛg-Veda*;

Taittirīya, *Kathā*, and *Śwetāśvatāra* are connected with the *Kṛṣṇa Yajur-Veda*;

Kena and *Chhāndogya* are related to the *Sāma-Veda*; and

Praṣṇa and *Manduka* are related to the *Atharva-Veda*.

In spite of the fact that the Upaniṣads are not as remote as the Veda in respect of language and symbolism, they are extremely difficult to understand. The Upaniṣads should be looked upon as vehicles of illumination and not of instruction; they were composed for seekers who already had a general familiarity with the ideas of Vedic and Vedāntic seers and even some personal experience of the truths on which they were founded. This is why they dispense in their style with expressed transitions of

thought and the development of implied or subordinate notions. Very often one single word or sentence reposes on a number of ideas implicit in the text but nowhere set forth explicitly. The reasoning that supports conclusions is often suggested by words but is not expressly conveyed to the intelligence. The reader, or rather the hearer, was supposed to proceed from light to light, confirming his intuition and verifying by his experience, not submitting the ideas to the judgements of logical reason. As a result, the Upaniṣads demand a good deal of patience, quietude and concentration, if we are to understand them properly. Even then it is difficult to penetrate into the inner meaning of the Upaniṣads.

There have been numerous commentators, and during the middle ages, there have been sharp differences of opinion even, as to the fundamental principles of the philosophy of the Upaniṣads. This has given rise to at least five major schools of Upaniṣadic interpretation. These are: *Advaitavāda* or the Monism of Sankarācārya, *Viśiṣṭādvaita* or the Qualified Monism of Rāmānujācārya, *Viṣṇuuddhādvaita* or the Pure Monism of Vallabhācārya, *Dvaitādvaitavāda* or the Dualism-non-Dualism of Nimbārkaācārya, and *Dvaitavāda* or the Dualism of Madhawācārya. The commentaries of these great Ācāryas are commentaries on *Brahma-sūtra* which was composed by Bādarāyaṇa (Vyāsa Rishi) in which the secret of the Upaniṣads was expounded aphoristically. The commentaries of the Ācāryas have been further commented upon by their disciples and there have been commentaries on commentaries. The *Bhagavadgītā* is also considered to be an organized exposition of the essence of Upaniṣadic teaching; but the *Bhagavadgītā* also has been interpreted differently by different Ācāryas, and there have been a number of commentaries on the *Bhagavadgītā*. The commentary literature on the

Upaniṣads, *Brahma-sūtra*, and *Bhagavadgītā* is continuing to develop even in our own times.

III

Vedic literature includes in its comprehensive sense Vedāṅga literature as well. Vedāṅga literature began to develop even before the Upaniṣads. *Mundaka Upaniṣad* mentions six Vedāṅgas as follows: (i) *Śikṣā*, (ii) *Kalpa*, (iii) *Vyākaraṇa*, (iv) *Nirukta*, (v) *Chhanda*, and (vi) *Jyotiṣa*. Each Vedāṅga takes up one aspect of the Veda and an attempt is made to explain it.

Śikṣā is related to sound, letters, pronunciation, the method of teaching and learning of these basic elements. Every Veda has its own peculiar pronunciation of certain letters, and each one of them has its specific modes and speed of recitation. A book called *Śikṣā Sangraha* contains a collection of 32 systems of *śikṣā*. These systems relate to different *śākhās* of the four Vedas. The most important among the books relating to *śikṣā* is the famous *Pāṇiniya Śikṣā*. Another important book is *Yājñavalkya Śikṣā*. In *Vasishthi Śikṣā* we have a detailed account of the differences between the *mantras* of the *R̥g-Veda* and *Yajur-Veda*. Both *Yājñavalkya Śikṣā* and *Vasishthi Śikṣā* are related to the *Vajasaneyi Saṃhitā*. The other important works are: *Katyāyana Śikṣā*, *Pārāshari Śikṣā*, *Mādhyandini Śikṣā*, *Keshavi Śikṣā* and *Manduki Śikṣā*. In *Nāradiya Śikṣā*, which is related to the *Sāma-Veda*, there is supposed to be the knowledge of the secret of different sounds.

The development of *Śikṣā* as a Vedāṅga and as a science demonstrates the profundity and vast scope of research that was undertaken in respect of pronunciation in ancient India. It is because of this Vedāṅga that the system of Vedic recitation has remained intact right from the ancient times to the present day. A given *śākhā* is recited in the same way all over the country, and

Vedapāthis of the same *śākhā*, belonging to different parts of India, pronounced *mantras* with the same intonation, speed and strength and force and even the same hand movements. If the Vedānga system of pronunciation has remained so uniform in the country and if the tradition has remained so powerful, it is because of the degree of perfection that was achieved in respect of *Śikṣā*.

Vedic religion involves complex ritualistic *Karmakāṇḍa* (system of prescribed acts and sacrifices). A detailed understanding of this *Karmakāṇḍa* became necessary in due course of time, and this gave rise to a vast literature of *Kalpasūtra*. *Kalpa* means that which is understood or justified in respect of sacrifices and other prescribed acts and rituals. *Karmakāṇḍa* is three-fold: *Śrauta-sūtras*, which are connected with sacrifices laid down in *Śruti* or Veda; *Grhya-sūtras*, which are related to various rituals connected with the life of the householder, and various *samskāras* which are laid down for important occasions of life starting from birth up to death; and *Dharma-sūtras* which are related to social, political and other benevolent duties. The entire *Kalpa* literature is *Sūtra* literature, since it is composed aphoristically. There is also a fourth category of *Kalpa-sūtra*, which is known as *Shulba-sūtra*, and which is related to the science of geometry and architecture connected with the construction of sacrificial altars, fire-vessels and other related structures.

Corresponding to each Veda there are various *Śrauta-sūtras*. *Śāṅkhyāyana* and *Āśwalāyana* pertain to the *R̥g-Veda*; *Ārsheya* (or *Māshaka*), *Lāhyāyana* and *Drāhyāyana* belong to the *Sāma-Veda*; *Āpastamba*, *Hiraṇyakeshi*, *Baudhāyana*, *Bhāradwaja* and *Vaikānasa* are related to the *Taittiriya śākha* of the *Kṛṣṇa Yajur-Veda*; *Mānava Śrauta-Sūtra* is related to *Maitrayāni śākhā* of *Kṛṣṇa Yajur-Veda* (this *Sūtra* is believed to be the basis of the famous *Manu Smṛti*); *Kātyāyana Śrauta-sūtra* is related to the *Śukla Yajur-*

Veda; *Vaitāna Sūtra* is related to the *Atharva-Veda*, and this *Sūtra* is also related to *Gopatha Brāhmaṇa* and *Kātyāyana Śrauta-sūtra* of *Yajur-Veda*.

The sacrificial priest needs to have appropriate knowledge of all the *Śrauta-sūtras* connected with the four Vedas. In some of the sacrifices, as many as 16 priests are required. There are 14 kinds of sacrificial acts, of which 7 are *Havir yajña* and 7 are *Soma yajña*. Of the *Havir yajña* the important sacrifices are those of *Darshapoornamāsyā* and *Chaturmāsyā*. In *Soma yajña* the important ritual is that of *Agniśtoma*. *Soma Yajñas* are of the three kinds, those which are for one day (*ekāha*), those of twelve days (*dwādashāha*), and those of many days (*anekāha*). *Agnicayana* connected with *Soma yajña* continues for one complete year.

Grhya-sūtras, which come after *Śrauta-sūtras*, also belong to different Vedas. *Śāṅkhāyāyana Grhya-sūtra* are related to the *R̥g-Veda*; *Gomila* and *Khādīra* belong to *Śāmbavya Grhya-sūtra*, and *Āśwalāyana Grhya-sūtra* *Sāma-Veda*; *Āpastamba*, *Hiraṇyakeśi*, *Baudhāyana*, *Mānava*, *Kāthaka*, *Bhāradwāja* and *Vaikhānasa* belong to *Kṛṣṇa Yajur-Veda*, while *Pāraskara* belongs to *Śukla Yajur-Veda*; *Kauśika Grhya-sūtra* belongs to *Atharva-Veda*.

The various rituals described in *Śrauta-sūtra* require three different kinds of *Agnikundas* (fire-vessels) which are called *Garhāpatya*, *Āhavanīya* and *Dakṣiṇa*, while in the *Deva yajña* prescribed by *Grhya-sūtra* only one *Agnikunda* is required.

Among the *Dharma-sūtras*, *Gautama Dharma-sūtra* is related to *Sāma-Veda*, and *Āpastamba*, *Hiraṇyakeshi*, and *Baudhāyana* are related to *Kṛṣṇa Yajur-Veda*. But *Dharma-sūtras* such as *Gautama*, *Vaśiṣṭha*, *Mānava*, *Vaikhānasa* and *Viśnu* are not related to any specific Veda *śākhā*.

The word 'dharma' has been used in various senses in Indian literature. According to *Manu Smṛti*, dharma is

characterised by what is contained in the Veda, in the *Smṛti*, and in what is involved in the conduct of good and noble people as also what is good for the one's inner soul. In Sanskrit literature, the word '*dharmaśāstra*' is largely connected with all the *Smṛtis* beginning with *Manu* and *Yājñavalkya* and which is in conformity with the Vedas. The Dharma literature begins with the *Dharma-sūtra* of *Gautama*, *Baudhāyana* and *Āpastamba* which appear to belong to the seventh to fourth centuries BC. In due course, the Dharma literature flourished extensively and as many as 100 *Smṛtis* seem to have been composed; some of them are in prose, but many are in poetic form. Among the authors of the *Smṛtis*, *Manu* is the foremost, and there have been a large number of commentaries on the *Manu Smṛti*. Among these commentaries, the prominent ones are those of *Medhātithi*, *Govindarāja*, *Kullukabhatta*, *Nārāyana*, *Rāghavānanda*, *Nandana* and *Rāmachandra*.

The subject of *dharma* has also been dealt with in some detail in the *Bhagavadgītā* which is the greatest gospel of *karmayoga* and in which we find the greatest ancient synthesis of *karma*, *jnāna* and *bhakti*. The *Bhagavadgītā* recognizes an evolutionary system of *dharma*, by means of which the individual and the society can be helped in their evolutionary and progressive development towards perfection. In the course of this development, there are also important concepts of *svadharma* and *svakarma*. And in the culminating chapter of the *Gītā*, we find Lord Kṛṣṇa asking Arjuna to renounce all *dharma*s and to surrender to the Supreme Divine.

This vast and complex teaching of the *Gītā* seems to be inherent in the teaching of the Veda, which is also the original synthesis of *karma*, *jnāna* and *bhakti*. The master concept of the Veda from which the concept of *dharma* developed in the later period is that of *ritam*. *Ritam* and *satyam* seem to be interchangeable, but there is a certain distinction between the two in so far as *satyam* may be

regarded to be *truth* and *ritam* to be *right*. In fact, the full formula of perfection as defined in the Veda is *satyam*, *ritam*, and *br̥hat*. *Br̥hat* or the vast is the fundamental perspective of the truth. Where there is limitation, there is partiality and there is imperfection or distortion of truth. It is only in the context of the vast infinitude that truth can be apprehended, comprehended and known, and it is only when truth is known that right action can proceed. This is the significance of the trinity of *satyam*, *ritam* and *br̥hat*.

If we keep firm on this original meaning of *ritam*, we can appreciate the entire development of the concept of *dharma* in Indian literature. *Dharma* is that which holds us, which gives us cohesion and which keeps us fixed on the progressive path of development and growth. In this context, there cannot be a static *dharma*, and there cannot be one uniform *dharma* for all human beings and for all levels of life. What is right for a *tāmasika* (dull) being cannot be right for the *rājasika* (passionate or dynamic), and what is right for the *rājasika* cannot be right for the *sāttwika* (pure and luminous). And since *sāttwika* is still not the highest, what is right for the *sāttwika* cannot be binding on the one who transcends even the golden fetters of the *sattwa*. The one who transcends the chain of *tamas*, *rājas* and *sattwa* and enters into the infinitude, the *Br̥hat* of the Veda, he becomes capable of transcending all *dharma*s which are appropriate to lower developments through *tamas*, *rājas* and *sattwa*. He is liberated from egoistic limitations, he becomes capable of total surrender to the Supreme, and in a state of comprehension of the truth, *satyam*, he becomes capable of the right action, *ritam*.

It is against this background of the concept of *ritam* and *dharma* that we can better appreciate the entire history of the *Dharmaśāstra* in India where there has been strict insistence on adherence to social law and yet

complex and flexible application of it, and even a supervening tendency to preach transcendence of all good and evil and all the binding chains of *dharma*.

We come next to *Nirukta*. *Nirukta* is a kind of commentary on *Nighantu* which is a collection of difficult words of the Veda. *Nighantu* is supposed to have been composed by Prajāpati Kashyap. In the first two chapters *Nighantu* provides a collection of those words which have one meaning, and in the fourth chapter, it gives a collection of those words which have several meanings. In the fifth chapter, the names of Vedic gods have been collected. There have been many commentaries on *Nighantu*, but it is the commentary of Yāska which has found its place as one of the Vedāṅgas, and this Vedāṅga is known as *Nirukta*. *Nirukta* is not confined only to meanings of words; it traces the words to their originals, and it indicates how different similar or dissimilar words arose from those origins. The principle that all names originated from verbs is an important principle of *Nirukta*, and even modern linguists accept this principle. It is believed that Yāska lived some time between the tenth and eighth centuries BC. Prior to Yāska also, there were many methods and systems of Vedic interpretation, such as *Ādhi-daivata*, *Ādhyātma*, *Ākhyāna-Samaya*, *Aitihāsika*, *Naidāna*, *Pārivrājaka*, *Yājñika*, etc. By the time we come to Yāska, the original meanings of many words had become obscure, and he mentions several words where there is no certainty of their meanings.

According to a belief propounded by Kautsa, Vedas have no meaning. Yāska opposed this belief and he said:

स्थानुरय भारहरः किलाभूत्। अधीत्य वेदान् न विजानाति यो ऽ
थर्म।

यो ऽ र्थज्ञ इत् सकलं भद्रमश्नुते। नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा।।

He has thus compared him who does not know the meaning of the Veda, to an inert bearer of Veda. According to him, one who attains to the knowledge of meaning becomes free from sin and proceeds towards heaven.

There have been several commentaries on *Nirukta* such as those of Durgāchārya, Skanda Maheshwara and Vararuchi.

Nirukta deals with various subjects which are very close to grammar or *vyākaraṇa*, and therefore *Nirukta* is often considered to be a part of *vyākaraṇa*. However, *vyākaraṇa* is considered to be a principal part of the six Vedāṅgas. *Vyākaraṇa* is looked upon as the mouth among the Vedāṅgas. According to the ancient tradition, Brahmā was the first to expound *vyākaraṇa*, and he was followed by grammarians like Brhaspati, Indra, Maheshwara, etc. The most celebrated author of *vyākaraṇa* is Pāṇini, who has himself mentioned several great names of the great grammarians. Pāṇini's famous book is *Ashtādhyāyī*, in which he has discussed both Vedic and non-Vedic words. There have been numerous grammarians who followed Pāṇini from first century BC up to fourteenth century AD. Some believe that Pāṇini belonged to seventh century BC, while others place him in the fourth century AD. According to Yudhishtira Mimāṃsaka, Pāṇini belonged to 2900 years before the beginning of the Vikram Era, which is supposed to be 200 years after the *Mahābhārata* war.

One of the greatest commentaries on *vyākaraṇa* is that of Patanjali. This is supposed to be the most authentic book on Pāṇini's *Vyākaraṇa*. The authenticity of Patanjali's commentary is so great that wherever there is a difference of opinion between *Sūtra*, *Vārttika* and *Mahābhāṣya*, the verdict of the *Mahābhāṣya* of Patanjali is regarded to be ultimately acceptable. According to Western scholars, Patanjali belonged to second century

BC. According to Yudhishtira Mimānsaka, Patanjali belonged to 2000 or 1200 years before the Vikram Era.

In sixteenth century AD, the method of the study of grammar propounded by Pāṇini began to be replaced to some extent by the tradition of Kātantra. In that tradition, *Siddhānta Kaumudī* of Bhattoji Dikshit and *Prakriyā Sarvasa* of Nārāyaṇa Bhatta are most prominent. *Vyākaraṇa* developed also in the field of philosophy, and this was initiated by Bhartrihari who belonged to the sixth century AD.

The composition of the Vedas indicates consummate development of the knowledge of the poetic meter, *chhandas*. The first discussion on Vedic meters is to be found in the *Śāṅkhyāyana Śrauta-sūtra*. But the classical work on meters is that of Maharshi Pingal. Meters or *chhandas* have been studied by Pingal in the eighth chapter of his book *Chhandah-sūtra*. In this book, he has taken into account not only Vedic meters but also others. There are mainly seven Vedic meters, namely, *Gāyatrī*, *Ushnik*, *Anushtubh*, *Brhatī*, *Pankti*, *Trishtubh*, and *Jagatī*. According to Kātyāyana, the highest number of *mantras* in the *R̥g-Veda* are to be found in *Trishtubh*. This number is 4253. *Gāyatrī* has 2467 *mantras*; *Jagatī* has 1350 *mantras*; *Anushtubh* has 855 *mantras*; *Ushnik* has 341 *mantras*; *Pankti* has 312 *mantras*, and *Brhatī* has 181 *mantras*. Although there are numerous meters, we find only 50 meters in the Sanskrit literature.

Prior to Pingalāchārya, there were several great teachers of *Chhanda Śāstra*, such as Koshtuki, Yāska, Kāshyapa and Māṇḍavya. There have been several commentaries on the *Chhanda-sūtra* of Pingalāchārya. In fact, there has been a continuous development of books on *Chhanda Śāstra* in Sanskrit literature.

The development of musical science also owed a great deal to *Chhanda Śāstra*. It is well known that the *Sāma-Veda* is meant to be sung. Although the method of singing the

Sāma is different from that of classical music, the seven tunes, namely, *shadja*, *rishabha*, *gāndhāra*, *madhyama*, *panchama*, *dhaivata*, and *nishāda* are used in *Sāma* in the same way as in classical music. In the *Chhāndogyaopaniṣad* which is based upon the *Sāma-Veda*, five types of musical renderings of the *Sāma* have been indicated, namely, *Himkāra*, *Prastāva*, *Udgitha*, *Pratihār* and *Nidhān*. It is noteworthy that Vedic literature refers also to several musical instruments, including the veena. In social life, too, because of the close connection between religious rites and music, various melodies developed, particularly six melodies corresponding to the six seasons. Closely connected with music was the development of dance and drama. Among the important works in Sanskrit regarding music, dance and drama the most important one is *Nāṭya Śāstra* of Bharat Muni. There are two *Samhitās* on *Nāṭya Śāstra*, namely, *dwādasha sahasri* and *shat sahasri*. The traditions established by Bharat Muni remained prevalent for more than a thousand years, and even in the book *Sangeet Ratnākar* of Sharangadeva of thirteenth century AD, the authority of Bharat Muni has been acknowledged. Thereafter also there has been a vast literature on music, dance and drama. In fact, music, dance and drama received royal patronage throughout the ages, and some of the great kings of the north and south were themselves great musicians.

Closely connected with *Śikṣā*, *Chhanda* and *Vyākaraṇa*, there is a body of literature known as *Prātiśākhya*. For each Veda and for each *śākhā* there are certain specific rules, and these rules deal with various subjects connected with pronunciation, meters and other grammatical matters. The meaning of the Veda is also indicated in the *Prātiśākhya*, and it is therefore considered to be an aid to the study of the concerned Veda. The *Ṛk Prātiśākhya* deals with the *Śaishirīya Upaśākhā* of the *Śākala śākhā* of the *Ṛg-Veda*. Maharshi Shaunaka is the author. The great

commentator Uvat has written a commentary on this *Prātiśākhya*. It is believed that the *Ṛk Prātiśākhya* was composed between fifth and sixth centuries AD.

Vajasaneyi Prātiśākhya was composed by Kātyāyana who belongs to a period earlier than that of Pāṇini. Uvat and Anantabhatta have written, respectively, *Matriveda* and *Padārthiprakashaka* to elucidate the *Prātiśākhya* of Kātyāyana. *Taittirīya Prātiśākhya* is related to the *Taittirīya Saṃhitā* of the *Kṛṣṇa Yajur-Veda*. The commentary has been written by Mahishi, which is known as *Padakramasadana*.

Pushpasūtra and *Riktantra* are the two *Prātiśākhyas* on the *Sāma-Veda*. The author of *Pushpasūtra* is supposed to be Vararuchi, and the author of *Riktantra* is supposed to be Shākatayāna.

The *Caturādhyayika* is the oldest *Prātiśākhya*, of the *Atharva-Veda*. Kautsa is supposed to be the author of this *Prātiśākhya* which is also known as *Kautsa Vyākharana*.

The sixth Vedāṅga relates to *jyotiṣa*—astronomy and astrology. *Jyotiṣa* is considered to be the science of light, and it is looked upon as the eyes among the Vedāṅgas. Vedic knowledge had discovered an inner rhythm cosmic movement, and this rhythm seems to correspond with periodic developments and seasons of human life. Time was conceived as a succession of movements that measure growth, development and fulfilment of human aspirations. Since human aspirations and sacrifice were closely connected with each other, the determination of the time of the beginning and the end of sacrifices assumed great importance. As a result, the transit of planets, calculation of days and nights and the determination of various seasons were closely studied. The science of *jyotiṣa* described planets, constellations, comets and also the rotations and revolutions of various luminous objects of the heavens. Corresponding to the movements of planets there were also predictions in

regard to fortunate or unfortunate results in human life. This is at the root of astrology.

R̥g-Veda Jyotiṣa Vedāṅga has been attributed to Lagadhācharya. It consists of 36 verses. There is also a *jyotiṣa* related to the *Yajur-Veda* and another related to *Atharva-Veda*. *Yajur-Veda Jyotiṣa* consists of 34 verses, and it has been attributed to Shoshāchārya. *Atharva-Veda Jyotiṣa* has 14 chapters and 102 verses. It is supposed to be a dialogue between Pitāmaha who was the speaker and Kashyapa who was the listener.

Among the greatest astronomers and astrologers of India, the most celebrated name is that of Varāhamihira. His famous book, *Pancha Siddhāntikā* speaks of five systems of *jyotiṣa*: Pitāmaha Siddhānta, Vaśiṣṭha Siddhānta, Romaka Siddhānta, Poulisha Siddhānta, and Surya Siddhānta. In due course, *jyotiṣa* inspired the development of various sciences including arithmetic, algebra, geometry, astronomy and astrology. Bhaskarācharya of twelfth century AD is regarded as the first among the mathematicians and astrologers of the middle ages. *Jyotiṣa* is even today prevalent all over India, and it is even now a developing science. The *Panchāṅga*, which gives detailed information regarding the *tithi*, *vāra*, *nakshatra*, *yoga* and *karana*, is commonly used in most Indian homes; and the annuals of the *Panchāṅga* are constantly consulted by astronomers, astrologers and many individuals in day-to-day life.

Apart from this Vedāṅga, there are also four other sciences and arts which have come to be known as Upavedas. The Upaveda of the *R̥g-Veda* is Āyurveda, the Upaveda of the *Yajur-Veda* is Dhanurveda, the Upaveda of the *Sāma-Veda* is Gandharvaveda, and the Upaveda of the *Atharva-Veda* is Arthaveda. Āyurveda is related to the secret of life and the science and art of sustenance, protection and maintenance of long life. The originator of Āyurveda is supposed to be Dhanwantari. Apart from

him, other prominent names are Aitareya, Kashyapa, Harit, Agnivesha, and Bhedamuni. At present, three important books of Āyurveda are: *Chakra Saṃhitā*, *Sushruta Saṃhitā*, and *Vāgbhatta Saṃhitā*. These three books are collectively called *Brihat-trayi*.

Dhanurveda seems to be a very ancient science dealing with weapons of war and art of warfare. In the *Rāmāyana* and *Mahābhārata* a good deal of light is thrown upon this science and art, particularly in the descriptions of battles. The most ancient books of Dhanurveda are not available, but some of the known books are *Dhanurvedhi*, *Drauna Vidyā*, *Kodanda Mandana* and *Dhanurveda Saṃhitā*. According to the tradition, the originator of Dhanurveda is Lord Shankara himself. Parashurāma is supposed to have learnt Dhanurveda from Lord Shankara. Dronācharya learnt this science from Parashurāma, and Arjuna learnt it from Dronācharya. Sattyaki is supposed to have learnt this science and art from Arjuna.

Gandharvaveda is the science of music, derived from the *Sāma-Veda*, and we have already dealt with this subject briefly, while dealing with the Vedānga of Chhanda.

Arthaveda is the Upaveda of the *Atharva-Veda*, which deals with social, economic, and political systems. It also deals with architecture and various arts. According to Shukranīti there are a number of arts but 64 are considered to be more prominent. In later literature we find that 64 arts or *kalās* were expected to be cultivated by a cultured lady. These included the art of cooking, skill in the use of body ointments and paints for the teeth, etc., music, dancing, painting, garland-making, floor decoration, preparation of the bed, proper use and care of dress and ornaments, sewing, elementary carpentry, repair of household tools and articles, reading, writing and understanding different languages, composing poems, understanding dramas, physical exercises,

recreation from utilizing leisure hours, and the art of preparing toys for children.

The most famous book of Arthashastra is that of Kautilya. This book has remained authoritative, and many books which have been written thereafter on Arthashastra rely upon that book. Prior to Kautilya, we have also the famous enunciations of Bhishma and Vidura.

IV

For a proper understanding of the Veda, not only Veāngas but also *Itihāsa* and Purānas have been recommended. From the point of view of history (*itihāsa*), the *Rāmāyana*, *Mahābhārata* and Purānas are consulted. But in Indian literature the word '*itihāsa*' refers mainly to *Mahābhārata*. Maharshi Valmiki is the author of the *Rāmāyana* and the *Mahābhārata* was composed by Maharshi Vedavyāsa. According to the tradition, the word *purāna* is so called because it is supposed to refer to the most ancient knowledge, even though the most ancient composition is that of the Veda. It is said that Brahmā had received the knowledge containing the Purānas from the Supreme Divine; Brahmā transmitted it to his four mind-born sons, including Sanat Kumāra. Nārada received this knowledge from Sanat Kumāra, and he transmitted it to Kṛṣṇa Dwaipāyana Vedavyāsa. Vedavyāsa composed that knowledge in 18 books, each one of them is called a Purāna.

The names of these Purānas are given in the following table along with the number of verses mentioned against each.

<i>Name</i>	<i>Number of verses</i>
<i>Brahmā Purāna</i>	10,000
<i>Padma Purāna</i>	55,000
<i>Vishnu Purāna</i>	23,000
<i>Shiva Purāna</i>	24,000
<i>Bhagavata Purāna</i>	18,000
<i>Nārada Purāna</i>	25,000
<i>Markandeya Purāna</i>	25,000
<i>Agni Purāna</i>	10,500
<i>Bhavishya Purāna</i>	14,500
<i>Brahmavavarta Purāna</i>	18,000
<i>Linga Purāna</i>	11,000
<i>Varaha Purāna</i>	24,000
<i>Skanda Purāna</i>	81,000
<i>Vamana Purāna</i>	10,000
<i>Koorma Purāna</i>	17,000
<i>Matsya Purāna</i>	14,000
<i>Garuda Purāna</i>	19,000
<i>Brahmānda Purāna</i>	12,000

There are also a number of Upapurānas, such as *Narasimha*, *Nandi*, *Bhārgava*, etc.

The Purānas have been composed to explain the meanings of Vedas to the common masses of people so as to evoke in them sensitivity in their being towards Divine knowledge and to inspire in them devotion for the Supreme Reality. The Purānas describe the creation of the universe, development of the universe, and the dissolution of the universe. In several Purānas, there is a good deal of description of the earth and its geography, and apart from many legends, there is also a description of secret knowledge relating to birth, death and the condition of the soul after the death of the body. We also find in them questions and answers dealing with philosophic and yogic matters. Most importantly, the

Purāṇas are related to great deities, particularly Brahmā, Vishnu, and Shiva. The *Bhāgavata Purāṇa* is considered to be the most valuable book on Lord Kṛṣṇa, and it is looked upon as an unparalleled composition on the theme of Shri Kṛṣṇa and devotion to Shri Kṛṣṇa. The Purāṇas are also related to several other deities and great rishis of the past. An important contribution of the Purāṇa is related to the concept of *avatāra* and the description of various *avatāras* of the Supreme Divine.

Purāṇa literature is very vast and it has made a great impact on the religious and spiritual mind of India.

The tradition of philosophy in India goes back to very early times, and based upon the Veda, several systems of philosophy have flourished. These systems are: Nyāya, Vaiśeṣika, Sāṅkhya, Yoga, Pūrva Mīmāṃsā and Uttara Mīmāṃsā. All these systems of philosophy accept the authority of the Veda, and although there are differences among them, attempts have also been made to bring about a synthesis of these systems of philosophy. The literature on these systems is to be found in the *Sūtras* attributed to great philosophers such as Gautama, Kanāda, Kapila, Patanjali, Jaimini and Bādarāyaṇa, and in copious commentaries and commentaries on commentaries. In fact, even in the modern period there are expositions and commentaries on these systems of philosophy.



